अंक : १०६

अप्रैल - जून २००९

कथाबिंब

कथप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियाँ

नूर मुहम्मद 'नूर', कुंवर प्रेमिल, डॉ. प्रदीप अग्रवाल,
पी.डी. बाजपेयी, उज्ज्वला केलकर

सागर-सीपी

प्रो. भागवत प्रसाद मिश्र

आमने-सामने

हस्तीमल 'हस्ती'

१५ रूपये

अप्रैल-जून २००९
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"
संपादिका
मंजुश्री
संपादन सहयोग
प्रबोध कुमार गोविल
जय प्रकाश त्रिपाठी
अश्विनी कुमार मिश्र
हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ५०० रु., **त्रैवार्षिक** : १२५ रु.,
वार्षिक : ५० रु.,
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा केवल "**कथाबिंब**" के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई - ४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

●**"कथाबिंब" वेबसाइट पर उपलब्ध** ●
www.kathabimb.com

e-mail : kathabimb@yahoo.com
(कृपया रचनाएं भेजने के लिए ई-मेल का प्रयोग न करें.)

प्रचार-प्रसार व्यवस्थापक :
सुभाष गिरी
फोन : ९३२४०४७३४०

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

क्रम

कहानियां

।। ७ ।। कैफ़ियत / **नूर मुहम्मद "नूर"**
।। १२ ।। घर आंगन और गिरगिटान / **कुंवर प्रेमिल**
।। १६ ।। इच्छा-मृत्यु / **डॉ. प्रदीप अग्रवाल**
।। २० ।। स्लम-डॉग / **पी. डी. बाजपेयी**
।। २४ ।। एक थी हसीना (मराठी कहानी) / **उज्ज्वला केलकर**

लघुकथाएं

।। ११ ।। दो बूढ़े / **कुशेश्वर**
।। १५ ।। सस्ते जूते, खुन्नस / **कुंवर प्रेमिल**
।। ३९ ।। विकास के सोपान / **राकेश "चक्र"**
।। ४५ ।। देहभक्षी / **ज्योति जैन**

कविताएं / ग़ज़लें

।। १५ ।। बेहोशी / **डॉ. तिलकराज गोस्वामी**
।। १९ ।। हद हो गयी / **राधिका रमण नीलमणि**
।। २३ ।। कल भी शायद फ़र्क़ नहीं पड़ना है / **केशव शरण**
।। २९ ।। ग़ज़ल / **कृष्ण सुकुमार**
।। ३३ ।। ग़ज़लें / **हस्तीमल "हस्ती"**
।। ४५ ।। कोशिश / **डॉ. के. बी. श्रीवास्तव**
।। ४६ ।। जेब टटोलता है / **जे. पी. टंडन "अलौकिक"**
।। ४६ ।। हंसता कौन है ? / **डॉ. वरुण कुमार तिवारी**

स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।। ३० ।। "आमने-सामने" / **हस्तीमल "हस्ती"**
।। ३४ ।। "सागर-सीपी" / **प्रो. भागवत प्रसाद मिश्र "नियाज़"**
।। ३८ ।। "बाइस्कोप" (*सविता बजाज*) / **के. ए. अब्बास**
।। ४० ।। "वातायन"
।। ४१ ।। पुस्तक-समीक्षाएं

आवरण चित्र : नमित सक्सेना

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

With Best Compliments From

K. K. Kumar
Director

Compack
PACKAGING PVT. LTD.

Unit No. II
No. 213 Mambakkam,
Vandalur-Kelambakkam Road, Chennai-600 048.
Mob. 9820445188 # e-mail : kumarcompack@rediffmail.com

With Best Compliments From

THERMOVAC PACKAGING INDIA PRIVATE LIMITED

Unit - II
SHED NO.1, SR. NO. 57/3, (15) DUNETHA,
NANI DAMAN-396 210

कथाबिंब

के

१०६ वें

अंक

के

प्रकाशन

पर हमारी

अशेष

शुभकामनाएं !

–एक शुभेच्छु

कुछ कही, कुछ अनकही

"कथाबिंब" के प्रकाशन का एक वर्ष और पूर्ण हुआ. इतने सालों के बाद भी प्रकाशन संबंधी समस्याएं कमोबेश पहले जैसी हैं. हर अंक का निकालना आज भी आग के शोलों पर से गुज़रने जैसा ही है – एक अग्निपरीक्षा ! पर्याप्त विज्ञापन न मिलने पर अंक के रिलीज़ होने में न चाहते हुए भी विलंब हो जाता है. कुछ वर्षों से "संस्कृति संरक्षण संस्था" का सहयोग अवश्य मिलने लगा है. पर इसके चलते संस्था के आयोजन भी श्रम और समय की मांग करते हैं. संस्था के कार्यक्रमों के लिए अलग से धनराशि को जुटाने के लिए भी उन्हीं स्रोतों पर बार–बार निर्भर करना पड़ता है जिनका उपयोग पत्रिका प्रकाशन में होता आया है. इस तरह बात घूम फिरकर वहीं अटक जाती है. हां, ३० साल की अवधि में "कथाबिंब" ने कथाप्रधान पत्रिका के रूप में एक निश्चित पहचान बना ली है. हमें पर्याप्त लेखकीय सहयोग प्राप्त हो रहा है. पत्रिका के आजीवन सदस्यों की संख्या १८० से अधिक हो गयी है. कई बार, दूर–दराज से कोई आजीवन सदस्यता का मनीऑर्डर भेज देता है तो मन आल्हादित हो जाता है. इसी तरह जब कभी कोई पाठक पत्र लिख कर बताता है कि जाने कबसे उसने "कथाबिंब" के अंक जमा करके रखे हैं तो भी मन आनंदित हो जाता है, अपने प्रयासों की सार्थकता महसूस होती है.

इस अंक में, पृष्ठ ५२ पर ***"कमलेश्वर–स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार २००८"*** के पुरस्कारों की घोषणा की गयी है. सभी पुरस्कार विजेता कथाकारों को हार्दिक बधाई एवं उनका अभिनंदन !

पिछले अंक में ग़लत जानकारी के आधार पर यह सूचना चली गयी थी कि "नवनीत" के भूतपूर्व संपादक श्रीयुत नारायण दत्त जी अब हमारे बीच नहीं हैं. मैं इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूं. अंक के मिलते ही कई फ़ोन आये कि यह ख़बर सही नहीं है. मैंने तुरंत बैंगलौर फ़ोन किया और आदरणीय नारायण दत्त जी से माफी मांगी. विनम्रता की प्रतिमूर्ति नारायण जी ने कहा कि कोई बात नहीं, शास्त्रों के अनुसार ऐसे समाचारों से तो आयु बढ़ जाती है. हमारी कामना है कि श्रीयुत नारायण दत्त जी शतायु हों !

●

आइए, अब कुछ इस अंक की कहानियों पर – पहली कहानी *"टूटा खिलौना"* (अमर स्नेह) एक छोटी बच्ची की कहानी है जिसकी मां उसके साथ नहीं रहती. किन्हीं कारणों से पिता ने मां को घर से बाहर कर दिया है. बच्ची का बाल मन नहीं समझ पाता कि ऐसा क्यों है. *"मकड़जाल"* में कैलाश चंद्र जायसवाल ने रेखांकित किया है कि कोई ईमानदार आदमी ग़लत काम नहीं करना चाहे तो भी अपने हितों के लिए बाहुबली जबरदस्ती उससे ग़लत काम कराना चाहते हैं. ऐसे में ईमानदार आदमी की स्थिति जाल में फंसी मकड़ी सदृश्य हो जाती है. उर्मि कृष्ण की कहानी *"चुटकी भर सिंदूर बिना"* एक ऐसी औरत की कहानी कहानी है जो अपनी ज़िंदगी बिना शादी के एक आदमी और उसके बच्चों की सेवा–टहल में निकाल देती है. किंतु समाज इस संबंध को मान्यता नहीं देता. वृद्धावस्था में यह स्त्री पूरी तरह एकाकी हो जाती है. तेलुगु लेखक अंबला जनार्दन *"संबंध"* के माध्यम से यह दिखाना चाहते हैं कि किसी के कहने में नहीं आना चाहिए. बिजनेस हथियाने के लिए कुछ लोग अपनी स्वार्थ–सिद्धि के लिए संबंधों में दरार पैदा कर देते हैं. किंतु एक बार संबंध का धागा गर टूटा तो उसका जुड़ना असंभव ही होता है. सुभाष नीरव की कहानी *"रंग बदलता मौसम"* अंक की दूसरी कहानियों से कुछ भिन्न है. एक अलग मिजाज की कहानी है. मनीष को ख़बर मिलती है कि जिस रंजना को वह मन ही मन प्यार करने लगा था वह कुछ घंटों के लिए ही सही उसके साथ होगी. एकाएक उसे दिल्ली का मौसम ख़ुशगवार लगने लगता है. पर दिन चढ़ने के साथ ही मौसम का रंग भी बदलने लगता है.

●

एक बार फिर सारे देश पर चुनावों का मौसम छाया हुआ है. पुराने गठबंधन टूट रहे हैं और नित नये गठबंधन बनाने की कोशिशें की जा रही हैं. ऊंट किस करवट बैठेगा यह किसी को नहीं मालूम है. बहुत–सी कुकुरमुत्ता पार्टियां पैदा हो गयी हैं. इससे पहले कि विस्तार से चुनावी माहौल की बात की जाये, आइए, पहले *"स्लम–डॉग मिलेनायर"* पर कुछ दृष्टिपात करें. अपने न्यूयॉर्क प्रवास में, दिसंबर ०८ में यह फ़िल्म देखने का अवसर मिला. तब तक हिंदुस्तान में इस फ़िल्म के बारे में किसी को ज़्यादा जानकारी नहीं थी, निर्देशक कौन है, कौन लोग काम कर रहे हैं, कहानी क्या है ? बहुत दिनों से कोई भारतीय पिक्चर नहीं देखी थी, सोचा कि चलो देखें कि अजीब से नाम वाली हिंदुस्तान पर आधारित अंग्रेजी फ़िल्म में क्या है ? शाम का समय था, कड़ाके की ठंड थी. टिकट–खिड़की के सामने लंबी लाइन थी. सौभाग्य से टिकट मिल गये. अंदर पहुंचे तो हाल खचाखच भरा था. फ़िल्म शुरू हुई. अरे, यह क्या ! यह तो अपनी मुंबई की कहानी है. किंतु जैसे–जैसे पिक्चर आगे बढ़ती रही, हमारे सिर शर्म से झुकते गये. पूरे हाल में हम तीन व्यक्तियों को छोड़कर सभी अमरीकी थे जो बहुत ही ध्यान से पिक्चर देख रहे थे. पत्नी ने तो यहां तक कहा कि आधे में ही फ़िल्म छोड़कर घर चलना चाहिए. पर शायद यह ठीक नहीं लगता. लेकिन *" जय हो !"* गाने को बीच में ही छोड़कर हम लोग बाहर आ गये. रात का अगला शो देखने के लिए लोग–बाग कतार में खड़े थे.

पूरी फ़िल्म में भारत को लेकर कुछ भी अच्छा नहीं दिखाया गया है. चाहे टीवी का *"कौन बनेगा करोड़पति"* कार्यक्रम हो, पुलिस का व्यवहार हो, विदेशी पर्यटकों की ठगने की घटनाएं हों, भीख मांगने वाले बच्चों के अंग भंग करने वाले सिंडिकेटों की बात हो या फिर मुंबई का माफिया, इस देश में हर क्षेत्र में बेईमानी, धूर्तता और घोटाला ही होता रहता है. एशिया की सबसे बड़ी झोपड़पट्टी धारावी भी इसी मुंबई में है, जहां कीड़े–मकीड़ों की तरह आदमी रहते हैं. जन–साधारण को किसी तरह की नागरिक सुविधाएं उपलबध नहीं हैं. जरा गौर करें कि इस फ़िल्म के माध्यम से विश्व में कौन–सा संकेत गया है. एक तरफ तो हम कहते नहीं थकते कि बहुत जल्दी भारत सुपर पॉवर के रूप में उभर रहा है. *"स्लम–डॉग मिलेनायर"* फ़िल्म इस बात का पूरी तरह खंडन करती है. दुनिया वालों देखो जो देश सुपर पॉवर बनने के सपने देख रहा है, दरअसल वहां की सच्चाई क्या है. ए. आर. रहमान ने न जाने कितनी फ़िल्मों में बहुत बेहतर संगीत दिया है. और सारा देश आठ–आठ ऑस्कर अवार्ड पा कर जश्न मना रहा है ! क्या इसी तरह भारत देश की जय होगी ? कई राज्यों ने फ़िल्म को मनोरंजन कर की छूट दी है. लेकिन हिंदी में डब की गयी फ़िल्म दिखाने वाले सिनेमा हाल खाली जा रहे हैं.

•

इस अंक के छपते–छपते तीसरे दौर का मतदान समाप्त हो जायेगा. आधे से कुछ ज़्यादा उम्मीदवारों का फैसला ई. वी. एम. मशीनों में बंद हो जायेगा. स्थिति पूरी तरह धुंधली है. बस इतना ही कि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं प्राप्त होगा. एक बार फिर वही खींचतान, पैसे का खेल और मंत्रियों के पदों को लेकर घींगामुश्ती. और अंत में कॉमन मिनीमन साझा कार्यक्रम ! इस बार अन्य कारकों के अलावा एक नया कारक *"जूता –फैक्टर"* भी सामने आया है. जूता मारा किसी को जाता है, पर लगता किसी को है. किसी गंभीर मुद्दे के अभाव में गाली–गलौच का माहौल भी गरम है. कौन कमजोर और कौन मजबूत, इस पर बहसें हो रही हैं. रोज आचार–संहिता का उल्लंघन हो रहा है. चचेरे भाई वरुण और राहुल गांधी चुनावी मैदान में हैं. दो परिवारों का आपसी मनमुटाव खुलकर सामने आ रहा है. मीडिया आग में घी डालने की अपनी भूमिका बखूबी निभा रहा है.

पहले चरण में नक्सली हिंसा में मरने वालों की संख्या में अतुलनीय वृद्धि हुई है. ऐसे में, इन्हीं दिनों यदि आई. पी. एल. का २०–२० क्रिकेट मुकाबला भी देश में ही चल रहा होता तो क्या होता ? एक और बात जहन में आती है कि जम्मू–कश्मीर को लेकर कहा जाता है कि वहां आतंकवाद में कमी आयी है. लेकिन अब भी घुसपैठ निरंतर जारी है. जितने घुसपैठिए मरते हैं, उतने ही सुरक्षा–कर्मी शहीद होते हैं. इसका वार्षिक आंकड़ा कितना है ? क्या इस अघोषित युद्ध को रोकना बिलकुल असंभव है ? आज का सबसे ज्वलंत मुद्दा आतंकवाद और देश की सुरक्षा है. देश ही सुरक्षित नहीं होगा तो किसी प्रकार का विकास नहीं हो सकता न बिजली, पानी और सड़क की समस्याओं से पार पाया जा सकता है. पर इस संबंध में कोई दल कुछ नहीं कहता ! आम मतदाता पूरी तरह दिगभ्रमित है.

•

२६ नवंबर ०८ को मुंबई में हुए आतंकी हमले के बाद से मीडिया पर अंकुश लगाने की बातें की जा रही थीं. लेकिन सरकार द्वारा दिये गये सुझावों को मानने के लिए इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तैयार नहीं हुआ. हां, सेल्फ–रेगुलेशन की बात सामने अवश्य आयी. यह देश का दुर्भाग्य है कि हमारा मीडिया पूरी तरह तथाकथित वामपंथी विचारकों द्वारा नियंत्रित किया जा रहा है. किसी झूठ को आप २४ घंटे दिखाते रहिए तो वह सच हो जाता है. गुजरात में, २००२ में हुए दंगों की जांच के लिए केंद्र द्वारा स्थापित विशेष जांच समिति की रिपोर्ट अभी कुछ दिन पूर्व उच्चतम न्यायालय के सम्मुख पेश की गयी. इस समिति के सदस्यों में थे सीबीआई के भूतपूर्व निदेशक श्री के. राघवन, भू. पू. पुलिस महानिदेशक सी. बी. सतपति और तीन वरिष्ठ आईपीएस अधिकारी – गीता जौहरी, शिवानंद झा एवं आशीष भाटिया. इस रिपोर्ट में जस्टिस ऑफ पीस स्वयंसेवी संस्था की अध्यक्षा तीस्ता सेतलवाद की भूमिका पर गंभीर सवाल उठाये गये हैं. बलात्कार के बाद कसूर बानो का पेट फाड़कर बच्चे को मारने को बार–बार प्रचारित करना जो सर्वथा झूठ था. कम से कम २२ गवाहों ने अपने बयानों को वापस को वापस लिया है. उनका कहना है कि अंग्रेजी में टाइप किये गये हलफ़नामों पर उनके हस्ताक्षर लिये गये थे या अंगूठे लगवाये गये थे. ये सभी एक–से और कंप्यूटर पर बनाये गये थे. यदि याद करें कि ज़ाहिरा शेख के मुकदमे को गुजरात से मुंबई में लाया गया था और मीडियावाले इसी तीस्ता सेतलवाद का चेहरा रोज–रोज टीवी पर दिखाते थे. ज़ाहिरा शेख ही वह महिला थी जिसने सेतलवाद की भूमिका पर पहली बार उंगली उठायी थी तो उसे रातोंरात ग़ायब कर दिया गया. ऐसा नहीं है ज़्यादतियां नहीं हुई हैं. इसमें दो मत नहीं हो सकते कि जो कुछ हुआ वह बहुत ग़लत हुआ. लेकिन उसे बढ़ा–चढ़ा कर मीडिया ने पेश किया वह भी ठीक नहीं था. गुजरात के बाद से देश में हुए हर आतंकी हमले को मीडिया २००२ से जोड़ देता है. कम से कम विशेष जांच समिति की रिपोर्ट आ जाने के उपरांत इस संदर्भ में अपनी भूमिका पर पुन: विचार करेगा, ऐसा सोचना ग़लत नहीं होगा और तीस्ता सेतलवाद पर कचहरी में अपेक्षित कार्यवाही होगी !

अरविंद

लेटर बॉक्स

❖ **ह**मेशा की तरह 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च २००९ अंक भी अपने स्तर और ताज़गी को बनाये रखने में सफल रहा. 'कुछ कही, कुछ अनकही' में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की विश्वसनीयता पर सवाल उठाकर आपने देश के प्रत्येक जागरूक नागरिक के मन को जुबान दी है, चाहे तीस्ता सीतलवाड हों या विभिन्न न्यूज चैनल, अपनी-अपनी दुकान को चलाये रखना इन सबकी मजबूरी है, भले ही उसके लिए तमाम तरह के गिमिक्स और झूठ का सहारा ही क्यों न लेना पड़े. याद कीजिए वह चैनल जो हर हफ़्ते सृष्टि की समाप्ति की घोषणा करता रहा. और याद कीजिए उसके समाचार-वाचकों की मदारी-जमूरे सरीखी भाषा, जिनकी जुबान यह तक कहते नहीं लड़खड़ाती कि अब छोटे-छोटे बच्चे भी नहीं बचेंगे. मृत्युशैया पर पड़ी जेड गुडी को लेकर इस चैनल की ब्रेकिंग न्यूज़ थी, कल वो मर जायेगी. वो अलग बात है कि जेड गुडी का निधन इस तथाकथित ब्रेकिंग न्यूज के तीन दिन बाद हुआ था. और अब तो शहर की सड़कों पर दौड़ती बिना ड्राइवर की कार, साईंबाबा की बोलती तस्वीर, स्वर्ग की सीढ़ियां और रावण का ताबूत दिखाने की इस होड़ में कमोबेश सभी चैनल शामिल हो चुके हैं. विदेशों में संपेरों और बाजीगरों के देश की हमारी छवि को जीवित रखकर हमारा देसी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया सिर्फ़ 'स्लमडॉग मिलियनेयर' जैसी फ़िल्मों के विदेशी निर्माता-निर्देशकों के बचे-खुचे काम को पूरा कर रहा है. मीडिया की स्वतंत्रता के नाम पर कुछ भी उल्टा-सीधा परोसनेवाले इन चैनलों के साथ सरकार को सख़्ती से पेश आना ही चाहिए. ख़ैर....

'बाइस्कोप' में इस्मत चुग़ताई के साथ गुज़ारे पलों को सविता जी ने बख़ूबी पेश किया है. इसमें दो राय नहीं कि सविता जी की लेखनी का जादू उनके संस्मरण की रोचकता को कई गुना बढ़ा देता है. यों तो अंक की अमूमन सभी कहानियां और लघुकथाएं स्तरीय हैं लेकिन इतना ज़रूर कहना चाहूंगा कि सैकड़ों बोलियों में बंटी हिंदी का हमें भाषा के स्तर पर कोई तो मानक तय करना ही होगा. वरना यथार्थवाद के फेर में पड़कर अक्सर हम ऐसी कहानी लिख मारते हैं, जो हिंदी के बजाय किसी ख़ास अंचल के पाठकों के लिए लिखी गयी एक बोली विशेष की रचना बनकर रह जाती है. ऐसी रचनाएं एक आम पाठक के मन में जुड़ाव कम, खीझ ज़्यादा पैदा करती हैं. क्षमा चाहूंगा, उर्मि कृष्ण की 'चुटकी भर सिंदूर बिना' एक ऐसी ही कहानी है, जो कहानी कम और रेखाचित्र ज़्यादा प्रतीत होती है, और जिसे मैं चाहकर भी डेढ़ पन्ने से आगे नहीं पढ़ पाया.

शिशिर कृष्ण शर्मा
✉ *ए/६०४, कार्तिक्या टॉवर, साईबाबा नगर, मीरा रोड (पूर्व), ठाणे-४०११०७*

❖ **'क**थाबिंब' का जन-मार्च ०९ का अंक मिला. अमर स्नेह की 'टूटा खिलौना' कहानी अच्छी है, जहां युवा नायिका की मां से बिछुड़ने और पिता की क्रूरता का हृदयस्पर्शी वर्णन हुआ है. अंत भी बहुत सालता है. मां और दादा के संबंध में जानकारी नही है कि लौटेंगे भी कि नहीं. 'मकड़जाल' कहानी एक ईमानदार ऑफिसर और भाऊ के गुंडों के बीच उलझी नज़र आयी. सुधीर अग्निहोत्री की 'माईबाड़ा' भी पसंद आयी. उर्मि कृष्ण की 'चुटकी भर सिंदूर बिना' कहानी गेंदा मौसी की दुःस्थितियों की कथा लगी. कथा संतुलित है. वहीं 'संबंध' (अंबला जनार्दन) कहानी राजाराम की लिप्सा, बेईमानी और अधिक पाने की होड़ को दर्शाने में सक्षम है. सुभाष नीरव की कहानी 'रंग बदलता मौसम', रंजना की छलावापूर्ण प्रेम की स्थिति को दर्शाती है. मनीष पूरी तरह बेबस नज़र आता है. रंजना का प्रेम एक धोखा था. नीरव की आत्मकथा और अंक की लघुकथाएं भी अच्छी हैं.

कलाधर
✉ सं. 'कला', नया टोला, लाईन बाजार, पूर्णिया-८५४३०१

❖ **'क**थाबिंब' का १०५वां अंक प्राप्त हुआ. धन्यवाद. संपादकीय हमेशा की तरह सारगर्भित. कहानियों में 'मकड़जाल' और एक अलग-सी अनुभूति से सराबोर 'रंग बदलता मौसम' अच्छी लगीं. वस्तुतः कहानियां समाज का दर्पण होती हैं. यथार्थ भ्रम, सत्य-असत्य... दंश-द्वेष, पीड़ा-आनंद और अनकहे छलावे

के विभिन्न रूप-रंग को व्यक्त करतीं... पाठक के मन में उतर सोचने पर विवश करतीं. 'कथाबिंब' की यह विशेषता है कि कथाचयन में उसका सानी नहीं है. बधाई स्वीकारें, प्रकाशन के ३१वें वर्ष में प्रवेश करने पर. लघुकथा 'भीड़-तंत्र' में दम है. सुभाष नीरव जी का आत्मकथ्य उनकी संघर्ष गाथा का परिचायक है. 'बाइस्कोप' के अंतर्गत सविता जी प्रत्येक अंक में संस्मरणों की अमूल्य सौगात बांटकर पाठकों के साथ एक विशेष बंधन में बंध जाती हैं.

डॉ. निरुपमा राय
✉ द्वारा श्री शंभुनाथ झा,
उर्सलाइन कॉन्वेंट रोड,
रंगभूमिहाता, पूर्णिया-८५४३०१

❖ **'क**थाबिंब' का ताज़ा अंक मिला. हमेशा की तरह उत्कृष्ट और दृष्टि संपन्न. एक अव्यावसायिक पत्रिका के प्रकाशन के तीस वर्ष पूर्ण होना, एक उल्लेखनीय उपलब्धि है. आज जब बड़े घरानों की पत्रिकाएं एक-एक कर बंद हो रही हैं, तब 'कथाबिंब' जैसी साहित्यिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि है.

प्रस्तुत अंक में अमर स्नेह, कैलाश चंद्र जायसवाल तथा उर्मिकृष्ण की कहानियों ने प्रभावित किया. शहरी 'सभ्यता' (?) में रंगी सुभाष नीरव की प्रेम-कहानी 'रंग बदलता मौसम' दूर तक सोचने पर विवश करती है. आत्म-कथा के अंतर्गत उनकी संघर्ष-गाथा लोमहर्षक है. यह सही है कि कथा में अनुभव ही बीज रूप में रहता है. भले ही अनुभव सूक्ष्म या अप्रत्यक्ष हो..., 'नियाज़' और अनंत राम मिश्र की ग़ज़लें विचारपरक हैं.

सूर्यकांत नागर
✉ ८१, बैराठी कॉलोनी नं.२, इंदौर-४५२०११

❖ **ज**नवरी-मार्च २००९ अंक मिला. गुणवत्ता की सभी परिभाषाओं पर 'कथाबिंब' २४ कैरेट का खरा सोना सिद्ध होती है. 'शून्य त्रुटियां' गुणवत्ता की प्रथम परिभाषा है. पत्रिका की प्रूफरीडिंग की मेहनत उच्चकोटि की है. दूसरी परिभाषा है, 'उत्कृष्टता'. पत्रिका की सभी गद्य एवं पद्य की रचनएं निःसंदेह सत्साहित्य हैं. गुणवत्ता की तीसरी परिभाषा है- 'ग्राहक संतुष्टि', 'कथाबिंब' पढ़नेवाले पाठक-पाठिकाएं संतुष्ट ही नहीं तृप्त हैं.

सत्साहित्य की तलाश में हमें मिलनेवाला गिलास आधा भरा ही नहीं पूरा भरा होकर छलक भी रहा है. सफलता के लिए लिफ़्ट नहीं होती - सीढ़ियां चढ़नी होती हैं. १०५ सीढ़ियां, ३० वर्ष की लंबी यात्रा सिद्ध करती है कि पत्रिका ५० वर्ष की ओर अग्रसर है. २०२९ में स्वर्ण जयंती मनायेगी. तब तक १८५ सीढ़ियां चढ़ लेगी. गुणवत्ता बनी रहे. यही मंगल शुभकामनाएं है.

दिलीप भाटिया
✉ ८९, न्यू मार्केट, रावतभाटा-३२३३०७

❖ **'क**थाबिंब' के अंक नियमित रूप से प्राप्त हो रहे हैं. अत्यंत आभारी हूं. अपरिहार्य कारणों से बहुत दिनों के बाद अपनी प्रतिक्रिया भेज रही हूं.

'कथाबिंब' (कथाप्रधान त्रैमामिक पत्रिका) प्रकाशन के ३१वें वर्ष में प्रवेश पर मेरी हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं स्वीकारें. 'कथाबिंब' अपने संपादकियों के माध्यम से विश्व, देश एवं समाज में घटित हो रही तमाम घटनाओं की सूचना एवं उन पर अपने निष्पक्ष विचार प्रस्तुत करती रही है. पत्रिका की कहानियां और सभी स्तंभ स्तरीय तथा संग्रहणीय हैं, गागर में ज्ञान का सागर भरने के आपके अथक प्रयास को नमन.

कनकलता,
✉ द्वारा श्री संजीव कुमार
सी-६/६३६० वसंत कुंज,
नयी दिल्ली- ११००७०

❖ **अं**क १०५ प्राप्त हुआ. लघुकथा 'मालती भाभी' व कहानी 'चुटकी भर सिंदूर बिना' सहित सर्वाधिक प्रभावित 'कुछ कही, कुछ अनकही' लगा. पढ़ते हुए लग रहा था मानो साहित्य विधा के साथ देश भर की बातों को यूं आमने-सामने बैठकर कर रहे हैं. चुनावी 'जूता फैक्टर' से लेकर सीमा सुरक्षा की चिंता व गुजरात का सच. सारी बातें आपसी वार्तालाप का हिस्सा ही प्रतीत हो रही थीं. 'कथाबिंब' के पाठक एवं सदस्य संख्या में निरंतर वृद्धि हो. ऐसी शुभकामनाएं.

श्रीमती ज्योति जैन
✉ १४३२/२४, नंदानगर, इंदौर-४५२०११

❖ **'क**थाबिंब' प्रकाशन के ३१वें वर्ष में प्रवेश पर हार्दिक शुभकामनाएं.

पत्रिका का जन-मार्च ०९ अंक पढ़कर मन प्रफुल्लित हो उठा. उर्मि कृष्ण की कहानी 'चुटकी भर सिंदूर बिना'

बहुत अच्छी लगी. लघुकथाओं में कुंवर प्रेमिल की 'समझौते की दीवाली' व आनंद बिल्थरे की लघुकथा 'मालती भाभी' प्रशंसनीय हैं. अशोक 'अंजुम' के दोहे 'हैरत में बेताल!' प्रभावी हैं.

संपादकीय सारगर्भित व प्रभावशाली है.

श्याम सुंदर 'सुमन'

✉बी-३२०, सुभाषनगर, भीलवाड़ा-३११००१

❖ **'क**थाबिंब' का १०५वां अंक मिला. अंक की कहानियां एक सांस में पढ़ गया. सभी ने अति प्रभावित किया. आपका चयन सदैव स्तरीय होता है. 'टूटा खिलौना', 'संबंध', एवं 'रंग बदलता मौसम' संवेदनशील कहानियां हैं. स्तरीय संपादन हेतु बधाई.

बड़े भाई कमलेश्वर की स्मृति में प्रति वर्ष 'कथा पुरस्कार' का आयोजन एक दस्तावेज़ी प्रयास है. सहज, सरल स्वभाव एवं बनावटी जीवन शैली से दूर प्रेमचंद यशपाल, राहुल की परंपरा के पोषक संघर्षों से उभरकर, मूल्यों के पक्षधर, भारतीय कहानी के गोर्की एवं हेमिंग्वे की स्मृति को चिरस्थायी बनाकर आपने ज़रूरी परंपरा कायम की है और पुरस्कार चयन की नयी मौलिक पद्धति अपनायी है, एतर्थ पुनः पुनः बधाई!

मदन मोहन उपेंद्र

✉ सं. 'सम्यक'

ए-१०, शांति नगर, मथुरा-२८१००१

❖ **'क**थाबिंब' के अंक बराबर प्राप्त हो रहे हैं. इस अंक में सुभाष नीरव की कहानी 'रंग बदलता मौसम' ने प्रभावित किया. मुख्य पात्रा रंजना जिस तरह से नायक को बेवकूफ बनाकर अपना उल्लू सीधा करती है वह आज समाज में कहीं भी देखने को मिल जायेगा. घटनाक्रम इतना सजीव है कि कहानी आस-पास घटित होती लगती है. लेखक को साधुवाद. 'कथाबिंब' की पहचान साहित्य जगत में विशेष स्थान रखती है. आपके श्रम एवं जीवट को शत-शत नमन.

डॉ. प्रद्युम्न भल्ला

✉५०८/२०, अर्बन एस्टेट, कैथल-१३६०२७

❖ **प**त्रिका का जनवरी-मार्च अंक मिला. 'टूटा खिलौना' कहानी में दंपत्ति की टकराहट से मासूम बच्ची पिसती है. सार यही है पति पत्नी की रार बेचारे बच्चे क्यों भुगतें. दूसरी कहानी 'मकड़जाल' सांस रोककर पढ़ता चला गया. इसमें राजनीति का अपराधीकरण सामने आया है. रचनाकार यही कहना चाहता है कि ऐसे लोगों के आगे हथियार टेकना बेईमानी है. 'रंग बदलता मौसम' बिल्कुल इंसान के रंग बदलते चेहरे पर आधारित है. एक चंचल बाला (स्त्री) थोड़ी जान पहचान करके आदमी को किस तरह बेवकूफ बनाती है. इसी से यह कहानी बड़ी रोचक सी लगती है. लोगों को समझना चाहिए छल-प्रंपच में स्त्री भी पीछे नहीं है. 'आमने-सामने' स्तंभ में आत्मकथा में रचनाकार अपनी आपबीती को पाठकों के सामने रखता है और पाठक बड़े चाव से पढ़ता है. यह अन्य लेखकों के लिए किसी नजीर से कम नहीं. कथाओं के साथ लघुकथाएं यही ज़ाहिर करती हैं कि आपको हर पाठक वर्ग का ध्यान है.

दिलीप कुमार गुप्ता

✉११ छोटा बमनपुरी, बरेली-२४३००१

❖ **'क**थाबिंब' का जनवरी-मार्च अंक प्राप्त हुआ अप्रैल से ही रास्ता देखते-देखते मई के आख़िरी सप्ताह में 'कथाबिंब' जब मेरे द्वार पर अवतरित हुई तो अंदर से कुछ ऐसा आभास हो रहा था कि 'हुज़ूर आते-आते बहुत देर कर दी.'

सर्वप्रथम पत्रिका को मेरी पुत्री साफिया ने पढ़ा जो इस समय चौदहवें वर्ष में चल रही है. उसने बताया, ''मम्मी 'कथाबिंब' बहुत अच्छी पत्रिका है और इसको बंद मत करना. इस पत्रिका में 'टूटा खिलौना' कहानी पढ़कर मैं बहुत रोयी हूं. तुम भी उसे अवश्य पढ़ना'' और मैंने उसे पढ़ा. वास्तव में आजकल के परिवेश में भग्न परिवारों की बढ़ती संख्या साहित्यकार के लिए महत्वपूर्ण विषय है, चिंतनीय विषय है. मैंने भी इस विषय पर एक कहानी जो गद्यात्मक कविता के रूप में हैं, लिखी है. इस पर 'शिखर' एवं 'फ़र्रुख़ाबाद महोत्सव' दोनों में सम्मान मिल चुका है.

एक ही बार में अंक पूरा पढ़ डाला क्योंकि आजकल स्कूलों की छुट्टियां चल रही हैं. 'आमने-सामने' में सुभाष नीरव का आत्मकथ्य बहुत अच्छा लगा. लघुकथा 'मालती भाभी' इस देश का भार अपने कंधों पर उठानेवाले कर्णधारों के इसी वर्ष किये गये कुकृत्यों पर एक करारा व्यंग था. बहुत अच्छा लगा. गद्य विधा में लिखना अभी तक मेरे द्वारा कम ही हुआ है फिर भी 'कथाबिंब' पढ़ने के बाद कोशिश कर रही हूं.

जमुर्रद बेगम शाद

✉ ६बी/५३१ आवास विकास,

फ़र्रुख़ाबाद-२०९६२५

कहानी

कैफ़ियत

पिछले पांच-सात दिनों के भयावह अंतर्द्वंद से आज कहीं जाकर नसीम को थोड़ी राहत, कुछ मुक्ति सी मिली.

सोमवार की दोपहर, अपने दो साल के मटमैले चिथड़े पहने बेटे को अपनी गोद में सुला रही, उस पागल जैसी औरत को देखने के बाद से, निरंतर, हफ़्ते भर लंबी मानसिक उथल-पुथल ने नसीम को अंदर से पूरी तरह तहस-नहस कर रखा था. वह औरत बार-बार उसके ज़ेहन में अपने बच्चे समेत आ धमकती. वह उसका बार-बार चारों ओर आते-जाते लोगों को देखकर हाथ फैलाना रिरियाना.... मुंह और बच्चे की ओर इशारा करना. खाते-पीते, सोते-जागते उसके ज़ेहन में बिजली की तरह कौंधती रही वह औरत.

नसीम उसके बच्चे के बारे में सोचता. पता नही कौन है उसका पिता? अगर बच्चे को बुखार हो गया तो? अगर वह औरत ही बुरी तरह बीमार पड़ जाये, मर जाये तो.... बच्चे का क्या होगा? कहां जायेगा वह? बच्चा उस दिन औरत की गोद में बेसुध पड़ा सो रहा था. क्या उसे बुखार था? सोमवार की उस दोपहर जब वह घाट से पुस्तकालय के लिए पत्रिकाएं लेकर लौटा तब भी, उसने देखा बच्चा औरत की गोद में बेसुध पड़ा हुआ है. थोड़ी दूर पर बैठे खीरे वाले से उसने दो छिले हुए खीरे लेकर औरत को देते हुए कहा- 'एकटा बच्चा के देबे' (एक बच्चे को दे देना).

'ओ घुमोच्चे एखुन (वो अभी सो रहा है).

'ठीक आचे. ओ उठले, ओके दिये देबे (उठने पर उसे दे देना).

'हें, रेखे दिच्ची.' उस औरत ने खीरों को कटोरे में डाल लिया था.

वह अपने दफ़्तर चला आया. मगर एक नामालूम सी बेचैनी थी जो उसे मथे दे रही थी. और इसके पीछे, वही पागल सी औरत और उसका बच्चा. उसी दिन, हठात् चार बजे के आसपास उसे ख़्याल आया, अरे, उस बच्चे को बुख़ार है या नहीं, यह तो औरत को खीरे देते वक़्त पूछना ही भूल गया था.

नसीम अपने अंदर की किसी पागल बेचैनी पर सवार फिर भागा घाट की ओर. पर यह क्या? औरत वहां नहीं थी. वह बच्चे को लेकर आख़िर कहां चली गयी? उसने दूर तक फुटपाथों पर तलाश किया. फ़ेयरली से लेकर आर्मेनियन घाट तक. सड़क के उस पार के फुटपाथ पर भी. पर वह कहीं नहीं थी. इसके साथ ही नसीम ने भी महसूस किया कि अब वो भी कहीं नहीं है. आख़िर ख़ुदा ने उसे, इस बेहिस, बेदिल दुनिया में भी ऐसा कंबख़्त दिल क्यों अता फरमाया? इतनी भावुकता, ऐसी छल-छल संवेदना तो कोई अच्छी बात नहीं मानी जाती अब दुनिया में. साहित्य की दुनिया की बात करें तो यहां भी आलोचना अति भावुक एवं सघन-संवेदनशील रचनाओं को अच्छी निगाह से नहीं देखती. इसे वह लेखक की कम़ज़ोरी और अपरिपक्वता कह कर ख़ारिज कर देती है.

// नूर मुहम्मद 'नूर'//

नसीम ने ख़ुद को दिलासा दिया. अरे ठीक है, कहीं चली गयी होगी..... हो सकता है बच्चे को सचमुच बुखार हो और औरत को पता चल गया हो, और वह बच्चे के लिए कहीं दवा मांगने चली गयी हो.

नसीम ने ख़ुद को कई तरह से तसल्ली दी. बड़े बेवकूफ़ हो यार. अरे इतना भी क्या परेशान होना. इस देश में लाखों क्या, करोड़ों ऐसे हैं जिनका घर नहीं, दर नहीं, ज़र-ज़मीन नहीं. खाने-पहनने की नहीं...... ऊपर से दर-दर की ठोकरें.... फिर तुम तो यूं परेशान हो रहे हो मानो वो कोई तुम्हारी रिश्तेदार हो ..... छोड़ो यार.... कहीं होगी वह.... कहीं और मांगने-खाने निकल गयी होगी.... फिर किसी दिन नज़र आ जायेगी अपने बच्चे के साथ... चलो. इस बार खीरे नहीं, पाव रोटी और जिलेबी खिला देना.

“”’

नसीम फिर अपने दफ़्तर लौटा था, जैसे वो दुनिया के किसी 'कहीं' में हठात् समा गयी थी.

सोमवार, मंगलवार, वह अंदर ही अंदर टूटता बिखरता, पिघलता रहा.... एक अजीब क़िस्म की तोड़क उदासी, एक परेशानी बेचैनी, व्याकुलता में लिपटा, सोचता.... बसों में दफ़्तर और घर में..... पत्नी ने कई बार उसको इस कैफ़ियत के साथ पकड़ा भी.

'का हुआ है जी. कई दिन से देख रही हूं.... बड़ा खोये-खोये से हैं.... ऑफिस में किसी से कौना झगड़ा-बगड़ा हुआ है का? की कौनो अफीसर कुछ बोल-बोल दिया है.... कतना बार आपको समझाया की अफ़ीसर लोग से दूर रहा करिए.... पर आप.....!'

'अरे नहीं... ऐसी कोई बात नहीं है..... दौरा पड़ा है....देख नहीं रही हो, सुबह उठकर.... फिर दफ़्तर से घर आकर क्या करता हूं.

फिर बुध से शुक्रवार तक यही कैफ़ियत बनी रही.... पहले कुछ अश्आर सूझे.... नसीम ने सोचा, एक ग़ज़ल ही हो जाये.... पर बात नहीं बनीं... फिर एक नज़्म... उसे लगा यही ठीक रहेगी... पर ग़ज़ल की तरह वो भी चार-पांच पंक्तियों के बाद ही बिला गयी. तमाम मशक़्क़तों पर पानी फिर गया. न ग़ज़ल पूरी हुई न नज़्म. बेचैनी थी कि उसने नज़्मो-ग़ज़ल के अश्आर में दाख़िल होने से इंकार कर दिया था. बहुत-बहुत कोशिश की. फ़िक्र और ख़्याल के घोड़े दौड़ाये..... पर हासिल अधूरी नज्में, ग़ज़लें. फटे हुए दिल की बेचैन आवाज़ें-अल्फाज़ में पनाह नहीं पा सकीं. उन ग़ज़लों के अल्फाज़ में जिनमें कभी ग़ालिब ने दर्दोग़म की कितनी ही कायनात निचोड़ डाली थीं. लेकिन....लेकिन उनसे भी तो, वह सब कुछ, जो आदमी को, आदमी के अंदर के आदमी और उसकी दुनिया को, जो यकायक तबाहो-बर्बाद कर दी जाती है, लफ़्ज़ों में उसी तरह नहीं निचोड़ा गया था. तब उन्हें भी.... यानी ग़ालिब को... अपने ग़मों को, अपनी पराजय को.... अपने दर्द और टीस को अपनी ग़ुरबत और अपनी लाचारी को बयान करनेके लिए, डायरी 'दस्तंबू' लिखनी पड़ी और ढ़ेर सारे ख़ुतूत भी.

पर नसीम ने आज अपनी परेशानियों से छुटकारा पा ही लिया. पांच दिनों से अंदर ही अंदर घुमड़ रही बेचैनियों का लावा अंततः पूरी तरह पिघल कर बाहर निकल ही गया. उसने चार-पांच पन्ने घसीटे और पूरा का पूरा लावा एक कहानी के हज़ार शब्दों में......

नसीम को तभी से कुछ राहत सी महसूस हो रही है. पर राहत तो उसे अपनी अंदरूनी हलचलों, बेचैनियों से मिली है. पर वो पागल सी औरत और उसका नंगधड़ंग मटमैला बच्चा उस औरत और उसके बच्चे को नसीम ने

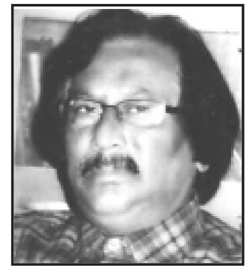

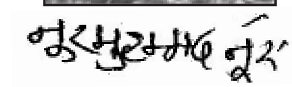

१७ अगस्त १९५४; गांव, महासन, (महुअवां कारखाना), जि. कुशीनगर (उ.प्र.)

प्रकाशन : कविता संग्रह 'ताकि खिलखिलाती रहे पृथ्वी' (१९९७), कहानी संग्रह 'आवाज़ का चेहरा' (२००३), ग़ज़ल संग्रह 'दूर तक सहराओं में' (२००६) प्रकाशित. 'सफर कठिन है.' शीर्षक ग़ज़ल संग्रह प्रकाशनाधीन. उपन्यास 'आश्चर्यपुरम' एवं आलोचना 'सन्नाटे का सृजन' पर काम प्रगति पर. संग्रह 'नीम हकीम ख़तरएजान' यंत्रस्थ.

विशेष : विभिन्न पत्रिकाओं के लिए निरंतर समीक्षा कर्म. द्विभाषी पाक्षिका पत्रिका 'उत्सवपुर्वरी' में पिछले चार वर्षों से स्तंभ लेखन. पहले भी कई पत्रिकाओं के लिए यह कार्य.

अन्य : कई एक ग़ज़ल गायकों द्वारा आपकी ग़ज़लों का गायन. हिंदी की तमाम लघुपत्रिकाओं में विभिन्न विधाओं की रचनाओं का निरंतर प्रकाशन. मित्रों के अनुसार सिर्फ़ ग़ज़लकार. 'कथाबिंब' द्वारा आयोजित 'कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार २००९' में श्रेष्ठ कहानी के अंतर्गत पुरस्कृत.

भाषाएं : अरबी, फ़ारसी, उर्दू, बांग्ला और अंग्रेज़ी किंतु लेखन सिर्फ़ हिंदी और मातृभाषा भोजपुरी में. संप्रति परतंत्र लेखन. प्रधान लिपिक.

कहानी में नहलाया और अच्छे कपड़े पहनाकर अच्छा भोजन भी कराया है. अपने मन की तसल्ली उसने कहानी लिखकर कर ली है. अपना सारा बेचैन ग़ुबार भी उसने निकाल लिया है. पर सचमुच में वह औरत क्या अब तक कहीं नहा चुकी होगी और उसने अपने बच्चे को भी नहला दिया होगा? क्या उन दोनों ने साफ़-सुथरे कपड़े भी पहन लिये होंगे? बढ़िया, भर पेट भोजन भी क्या उन्होंने खा लिया होगा? क्या वह औरत इस समय किसी सुरक्षित स्थान पर अपने बच्चे को अपनी छाती से चिमटाये सुख की नींद सो रही होगी?

नसीम को लगा, उसकी राहत, बाढ़ज़दा लोगों को मिल रही राहत से ज़्यादा नहीं है. उन्हें आसमान से गिराये गये. चिऊड़ा, गुड़, बिस्कुट के पैकेट बड़ी मुश्किल से मिल पाते हैं, और उसे एक कहानी मिल गयी है. लेखक का ज़मीर भी लेखक ही होता है.....नसीम को लगा उसके लेखक का ज़मीर मगर लेखक नहीं है. वह किसी लेखक की तरह नहीं सोचता.... शाइरों की तरह लफ़्फ़ाज और फ़नपरस्त नहीं है.

उसका ज़मीर उसके अंदर से बल खाकर बाहर निकल आया और एक बोन्साई आदमी की शक्ल में उसकी मेज़ पर तन कर खड़ा हो गया.

''क्यों?... मिल गयी तुझे राहत पिछले पांच दिनों से इसी के लिए न तड़प रहा था तू.... बेचैन था. ग़ज़ल ....नज़्म और आख़ीर में यह कहानी.... वाह! क्या कहानी है. एक लाचार, पागल सी औरत जिसका कोई नहीं.... यहां तक कि उसका एक अदद पति भी नहीं.... पर उसका एक बच्चा है. वह भीख मांग कर अपना और अपने बच्चे का गुज़ारा करती है. फ़ुटपाथों पर रहती है. अरे! वो भी तो पैदा हुई थी.... उसके मां-बाप... भाई, बहन, रिश्तेदार.... सब कहां मर गये... आख़िर उसके बच्चे का पिता कौन है? कहां है वो? किसने उसे यूं प्रताड़ित किया और क्यों? कैसे.... आख़िर कैसे, वह औरत इस दुर्दशा को प्राप्त हुई..... देखा है. अरे, देखा है तुमने किसी मर्द को एक बच्चे के साथ इस बुरी हालत में भीख मांगते हुए. फ़ुटपाथों पर जानवरों सा जीवन ढोते हुए. चीरहरण द्रौपदी का..... युधिष्ठर का क्यों नहीं? क्या है..... आख़िर क्या है औरत में जो सिर्फ़ और सिर्फ़ उसी का बेहुरमती.... उसी का अनादर.... दुख और विपत्ती का पहाड़ सिर्फ़ और सिर्फ़ उसी पर.... सिर्फ़ उसकी अग्निपरीक्षा..... उसी की संगसारी. हर कालखंड में..... हर जगह.....हर बार.... और आज भी.... स्त्री विमर्श.... अरे काहे का स्त्री विमर्श.... विमर्श के लिए विमर्श..... दलित विमर्श! दलित रोज़-रोज़ और पददलित... दलन चलता रहे और दलित-विमर्श भी .... अरे काहे का यह दलित-विमर्श और किसलिए... साहित्य को एक और नज़रिये से और समृद्ध करने के लिए... कि देखो.... हम दलित-विमर्श भी कर रहे हैं..... और इतना महान, उच्चकोटि का दलित लेखन हमने किया है. कहानी लिखकर राहत महसूस कर रहे हैं.... अरे कैसी और कहां की राहत.... क्या राहत.... सिर्फ़ राहत पाने के लिए ही लिखा जाये और चीज़ें, सूरतें, हालात, बदस्तूर वैसे ही बने रहें.... प्रेमचंद ने सैंकड़ों महान कहानियां लिखीं, उपन्यास लिखे.....संपादकीय लिखे, भाषण दिये..... महान कथाकार और उपन्यास सम्राट माने गये.... कोई तुक है कि कोई सारा जीवन ग़रीबों पर क़लम चलाये और सम्राट का तमग़ा पहना दिया जाये. प्रेमचंद ने सारा जीवन किसानों-मज़ूरों और खटकर खानेवाले मामूली लोगों की कहानियों की खेती की. किसान-जीवन का ऐसा कौन सा पहलू और दर्द उनकी कहानियों में नहीं.... कोई ईमानदार राजनेता चाहे तो उनकी कहानियां पढ़ कर ही किसानों की बुनियादी समस्याओं को समझ उन्हें दूर करने के प्रयासों में लग जाये..... अच्छा! पूछो तो इस देश के कृषि मंत्री ने प्रेमचंद की कहानियां पढ़ी हैं! या यही पूछ लो कि क्या उसने प्रेमचंद का नाम सुना है? आज प्रेमचंद के नाम पर करोड़ों के वारे-न्यारे हो रहे हैं. उनकी कहानियों के अधिकृत विद्वान बड़े-बड़े सरकारी-ग़ैरसरकारी सेमिनारों में हवाईजहाज़ों से आ जा रहे हैं. मोटा पारिश्रमिक कमा रहे हैं. लेकिन आज स्थिति क्या है? प्रेमचंद के कथापात्र हलकू-होरी मुल्क में चारों ओर आत्महत्याएं कर रहे हैं. सिंचाई के लिए पानी और फ़सल के लिए खाद की तो बात छोड़ो... आज उनके घर में सवा सेर अनाज तक नहीं.... सदियों से वे आधे बदन का कपड़ा पहने, हल जोत रहे हैं और उनकी समस्याओं का, दुखों का कोई हल नहीं... मुल्क में जगह-जगह उनकी ज़मीनें, ज़बरन उनसे छीन कर, उन्हें मारा-पीटा और ज़मीन से बेदख़ल किया जा रहा है. उनकी फ़सलों

की, फूलों की 'सेज़' छीनकर उन्हें कांटों की 'सेज़' पर लिटाया जा रहा है. उनके घीसू-माधव की संततियों की संख्या, देश भर में दिन दूनी, रात चौगुनी की रफ़्तार से बढ़ रही है. बाज़ार में एक किसान को छोड़कर सबकी इज़्ज़त और क़ीमत है. इसी किसान का उपजाया महकनेवाला बेशक़ीमती चावल खाना तो इज़्ज़त और रुतबे की बात है पर इस देश में किसान होना..... कालिदास की शकुंतला ही क्या प्रेमचंद की निर्मला नहीं... धनिया नहीं... और तुम्हारी निर्मला... धनिया यह अनाम औरत...... और निश्चित रूप से औरत का वह नंगा मटमैला बच्चा 'भरत' नहीं.... कौन है फिर वह लड़का... कल का घीसू... या माधव... कहानी लिखकर राहत महसूस कर रहे हैं... पूछो... पूछो... अपनी बीवी से पूछो... जो सारा-सारा दिन गृहस्थी के हिमालय लांघती है...पार करती है. रोज़-रोज़ अभावों के भयावह जंगल... वसंत, जले हुए वनों की तरह जिसके होठों पर हरहराता, फड़फड़ाता रहता है... सारा सारा दिन झाड़ू-बुहारू धोना-पोंछना, चुनना-फटकना, सीना-पिरोना और रसोई और... और रात फिर भी तोड़ती है सितम उसकी देह पर और वह पसर जाती है, पृथ्वी की तरह बेज़बान. पूछो-पूछो कितना राहत महसूस करती है वह यह सब करते हुए. एक कहानी लिखकर राहत महसूस कर रहे हैं... और बस. सारी ज़िम्मेदारी ख़त्म.... लानत है.... हज़ार लानत है तुम पर. तुम्हारे लेखक पर. .....आंक थू ऽऽ...''

इतना लंबा डायलॉग झाड़ कर नसीम का ज़मीर तो ग़ायब हो गया पर उसने सिर पकड़ लिया. लगा किसी हथौड़े से उस पर प्रहार किया हो. उसने एक सिगरेट सुलगा ली, मानो उसके ऐसा करते ही इस भयानक यत्रंणा से मुक्ति मिल जायेगी. थोड़ा स्थिर होने पर उसने फिर पूरी हो गयी कहानी को घसीट लिया और उसके नोकपल दुरुस्त करने लगा. तभी उसने देखा, पत्नी जो रसोई में थी, गैस पर चढ़ी सब्ज़ी चलाने के बाद, बरामदे में आकर धम्म से फर्श पर बैठी मानो गिर पड़ी हो- ''या अल्लाह! रहम मेरे मौला!'' नसीम ने महसूस किया उसकी आवाज़ में बला की एक वेदना, एक अजीब सी आज़िजी, खीझ भी भरी हुई थी. और उसके भाव भी जैसे उसके चेहरे पर उभर आये थे.

उसने देखा, तसले में आटा सानने के लिए अभी वैसे ही पड़ा हुआ था. सामने जग में पानी भी रखा था. गर्मी और घमौरियों की मार से बीवी की गर्दन और निचले हिस्से, उसने ग़ौर से देखा, स्याह हो रहे थे.

''क्या हुआ? बहुत थक गयी लगती हो.....तब्बीयत तो ठीक है ना... दो... दो मैं आटा सान देता हूं....'' बीवी ने उसे घायल सिंहनी की तरह घूर कर देखा. मानो नसीम ने कोई बहुत ग़लत बात कह दी हो.

''हम आपको बोले हैं आटा सानने के लिए'', ''नहीं-नहीं मैं सान दूंगा तो क्या हो जायेगा? सारा दिन ही तो खटती हो..... मैं अगर इसमें थोड़ा हाथ बंटा दूं तो इसमें ग़लत क्या है? आख़िर मैं कर ही क्या रहा हूं... कहानी ही तो लिख रहा हूं... कहानी-कविता लिख सकता हूं... तो आटा भी सान सकता हूं... मैं क्या कोई लाट गवर्नर हूं......''

''नहीं..... नही आप अपना काम करिए..... जिसका जो काम, उसको वही करे तो अच्छा....''

''क्यों? तुम तो... आजकल देख रहा हूं... कविताएं भी लिख रही हो... एक पूरी डायरी तुमने लगभग भर दी है. यह क्या तुम्हारा काम है?''

''वो तो मैं ऐसे ही... जब कुछ फ़ुर्सत होती है... या नींद नहीं आती. तो लिखती हूं.... पर आप तो लेखक हैं... आपका इतना नाम... मान-सम्मान है. इतना छपता है... किताबें हैं... आपका तो काम ही लिखना-पढ़ना... आटा सानेंगे... अचानक कोई आकर देख ले तो क्या सोचेगा... क्या कहेगा... कि देखो मरद से घर का काम करवा रही है... छिः.''

''क्यों... यह घर मेरा नहीं है क्या? और घर का काम मैं क्यों नहीं कर सकता? वैसे भी सारा काम, बाहर का करता ही हूं. राशन-किरासन, दवादारू, सब्ज़ी, नोनतेल, कपड़ा-लत्ता... कौन लाता है....? मैं ही ना.... लाओ, इधर दो... सान देता हूं आटा... जाओ तुम थोड़ा आराम कर लो. सब्ज़ी मैं उतार लूंगा....''

नसीम ने उठकर आटे की तसली संभाल ली, इसके पहले वह आटे में जग से पानी उंडेलता, मोबाइल चिचियाने लगा. विद्युतगति से उठ कर नसीम ने मोबाइल कान से चिपका लिया.

''हलो...'' उधर से आवाज़ आ रही थी.

''नानू... सलामालेकुम... क्या करते हैं? मैं साहिल

बोलता हूं... नानी कहां हैं? ख़ाला अम्मी... मामा से बात करूंगा.....''

नाती का फ़ोन था. उसकी मां ने फ़ोन लगाकर उसे थमा दिया होगा. साढ़े तीन साल का उसका नाती... हठात ही जैसे वो तनाव मुक्त हो गया था. एक अनजानी ख़ुशी न जाने कहां से नमूदार होकर उसमें समा गयी थी. उसने बीवी को आवाज़ लगायी जो शायद बग़ल वाले कमरे में आराम करने चली गयी थी. ''ए जी सुनती हो, लो बात करो नाती का फ़ोन है.'' उसने बीवी को फ़ोन थमा दिया था. पर तभी, उसके ज़ेहन में वह औरत अपने बच्चे समेत फिर आ धमकी. उसे लगा, जैसे यह वही बच्चा है जो उसे नानू कहकर. फोन कर रहा है और उसकी मां, वह पागल सी औरत, उसकी बहू हो जैसे... उसकी जैसे, अपनी बेटी....अपना नाती!

सी.सी.एम.क्लेम्सला सेक्शन,
दक्षिण पूर्व रेल्वे, ३ कोयला घाट स्ट्रीट,
कोलकाता-७००००१
फ़ोन - ९४३३२०३७८६

लघुकथा

दो बूढ़े

✍ **कुशेश्वर**

एक बूढ़ी मगर स्वस्थ और मुलायम आवाज़ ने जब रामपूजन जी को रोका तो वे थोड़ा भौंचक-से हो गये. मुड़कर देखा तो रोकनेवाले की आवाज़ अपरिचित थी, मगर उनकी ही उम्र जैसी थी. इसलिए वह पूछ बैठे,' जी, कहिए?'

'ट्राफिक सार्जेन्ट आपसे क्या कह रहा था? क्या आपसे किसी बात पर.....?

'नहीं, नहीं..... ऊ कोई ख़ास बात नहीं. बस, हमने उससे ई कहा कि पहले यहां स्टॉप था और बस रुकती थी, तो हम लोगों को उतर कर यहां से हाईकोर्ट जाने में सुविधा होती थी. अब तुम लोगों ने क्या नियम बना दिया है कि लगभग दो फर्लांग दूर उतर कर पैदल जाना पड़ता है. यह भी नहीं सोचा कि बूढ़े लोग इतनी दूर कैसे पैदल चल पायेंगे? तो इस पर उस सार्जेन्ट ने जानते हैं, क्या कहा?'

'क्या कहा?' ज़ाहिर है कि दूसरे बूढ़े की जिज्ञासा कुछ और बढ़ी.

'उसने कहा'- रामपूजन जी थोड़ा मुस्कुराये- 'बूढ़े हो गये हैं तो रिटायर होकर घर में बैठिए, बाहर घूमने की क्या ज़रूरत?'

'अच्छा! तो फिर आपने क्या कहा?' दूसरा बूढ़ा विस्मित था.

'मैं क्या कहता, रामपूजन जी थोड़ा उदास हुए, 'अब उसको कैसे बताऊं कि इस उम्र में भी अपना ख़र्च चलाने के लिए मुझे अपने ही जांगर का सहारा लेना पड़ता है. बेटा, छोटी-मोटी नौकरी करता है, लेकिन मेरा ख़र्च कैसे उठाये? सो मैं भी यहां हाईकोर्ट में कुछ इधर-उधर काम कर लेता हूं. मगर आप यह सब काहे पूछ रहे हैं?'

'इसलिए कि वह सार्जेन्ट मेरा बेटा है.'

'क्या?' रामपूजन जी थोड़ा चौके थे और सहमे भी थे.

'हां, दूसरे बूढ़े की आवाज़ थोड़ी भारी हो गयी थी, 'अभी घंटा भर पहले उसकी बीवी ने घर पर मुझसे कहा कि अपने ख़र्च के लिए मुझे ख़ुद हाथ-पांव चलाना चाहिए, उसका पूरा नहीं पड़ता है. इसीलिए ग़ुस्से में भरा हुआ लड़के के पास ही जा रहा था, लेकिन जब उसे आप पर बिगड़ते देखा तो यहीं रुक गया राजभवन के सामने. आपसे जो पूछा, उसका बुरा मत मानिएगा.'

'नहीं, नहीं.... बुरा काहे मानेंगे, जाइए अपने बेटे से मिल लीजिए.'

'नहीं, अब उधर नहीं जाऊंगा. क्या आपके साथ चल सकता हूं?'

'काहे नहीं, बिल्कुल चलिए.'

जाते हुए दोनों मुझे किसी चित्रकार की सुंदर कृति की तरह दिखाई दिये.

पी-१६६/ए, मुदियाली फर्स्ट लेन,
कोलकाता-७०००२४

कहानी

घर आंगन और गिरगिटान

मैंने शहर में एक प्यारा सा घर बना लिया है. कहने को शहर, पर यहां बिल्कुल देहात जैसा है. गांव से हूं न इसलिए मुझे गांव जैसे वातावरण की ही दरकार है.

इस घर में एक बड़ा सा आंगन है, गांव के आंगनों की तर्ज़ पर, जहां मैं अपने भाई के साथ क्रिकेट, कबड्डी खेला करता था. रात में चारपाइयों की एक लंबी श्रृंखला होती जिन पर से हम दोनों भाई जैसे उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक दौड़े चले जाते.

दोनों के बीच तकिया युद्ध भी उन चारपाइयों पर ही संपन्न होता. एक दूसरे के ऊपर तबियत से तकिये उछाले जाते. तकिये फट जाने पर पिटाई भी तबियत से होती. माताश्री झाड़ू मार-मारकर पीठ लाल कर देतीं. सच, माताश्री के हाथों पिटने का एक अलग ही आनंद होता.

हां, तो मैं इस शहर में आंगनवाला घर पाकर बेहद प्रसन्न हूं. कुछ बेलें, लताएं, गमले जिनमें भांति-भांति के फूल खिलते हैं. फाटक के दोनों ओर की लाल-सफ़ेद फूलों वाली कनेरें बुरी आत्माओं के प्रवेश से हमें बचाती हैं. तिस पर आम, बिही, अनार, आंगन का कर देते हैं पूरा अलौकिक श्रृंगार. ऊपर से हरा-भरा नीम यानि पूरा वैद्य-हकीम, हलीम-सलीम पीपल छांह देता है. अति शीतल.

आंगन के कोने में एक ज़ीना, जिसके नीचे बन गया है कोना-तिकोना. अपने राम बिना किसी की परवाह किये यहीं आराम फ़रमाते हैं. और तो और कहानियां भी यहीं लिख डालते हैं. यानि कि पूरा सुक़ून है यहां. मुझे यहां से उठना क़तई नहीं सुहाता, जब तक श्रीमतीजी चीख़ने-चिल्लाने न लगें.

''क्या सारा दिन वहीं तपस्या करते रहोगे?''- वह जब तब अपनी उपस्थिति का अहसास दिलाने से कभी नहीं चूकतीं. ऐसे मौके पर मैं अपना बोरिया-बिस्तर समेट लेता हूं. बला पास आये उसके पहले ही क्यों न खिसक लिया जाये.

मैं ठहरा ओरीजनली गंवई, आंगन के नल पर ही ठाठ से नहा लेता हूं. अजी बाथरूम के अंदर भी कोई नहाता है. बाल्टी भर पानी में छुल्ल से नहा लो, उसी में कच्छा-बनियान भी धो डालो. यह आंगन-स्नान श्रीमतीजी को दुखी कर जाता है. 'शर्म करो' - कहकर वह मुझे हमेशा छीलती रहती हैं.

''मैं कोई ज़नाना हूं जो सात पर्दों में नहाऊं?'' मैं भी कहां पीछे रहता हूं. अजी, पति-पत्नी में थोड़ी बहुत नोंक-झोंक चलती रहनी चाहिए बस.

''तुम कुछ करो या मत करो, पर ये सौतन कहानियां लिखना बंद करो.'' पत्नी कहती है.

// कुंवर प्रेमिल //

''क्या मैं जोरू का ग़ुलाम हूं जो सब कुछ तुम्हारी मनचाही करता फिरूं.''

''मैं तुमसे कब जीतूंगी बाबा''- वह रुआंसी हो जाती है.

''औरतों की लीला मैं ख़ूब जानता हूं''- मैं तब और उकसाता हूं.

उसके बाद दोनों के बीच शीत-युद्ध चालू, फिर ख़ुद ही छीलते रहो आलू. मैं तो कहता हूं कि पत्नियों को ऐसे ही सताना चाहिए.

एक दिन अषाढ़ ताबड़-तोड़ बरस रहा था. मैं बड़ी मुद्दत से आंगन में नहाने को तरस रहा था. मौसम सुहाना था, पेड़-पौधे मस्ती में नहा रहे थे. ऐसे में मुझे किसी काले-कुत्ते ने काटा था, जो पीछे रह जाता भला. बस फिर क्या था, कूद पड़ा मैदान में.

''अब क्या उधर भांगड़ा कर रहे हो.'' पत्नी किचन से ही चिल्लायी.

''तुम भी आओ न, कंपनी अच्छी रहेगी.''

''यह भोंडापन तुम्हें ही मुबारक हो.'' वह भला कब चूकती.

''अरे मुंबई में तो स्त्री, पुरुष, बच्चे सभी मिलकर नहाते हैं. मौजें-मौजा गाते हैं.''

''भाड़ में गयी मुंबई, तुम नहीं सुधरोगे. अरे बाबा ठंड लग जायेगी.'' कहते-कहते उसका मुंह फुला लेना आम बात है.

''तुम कोई मेरी टीचर लगी हो जो......''

''भाड़ में जाओ''- उसके गाल फूलकर आलूबंडे हो जाते हैं. पत्नी यदि बात-बात में पिनके तो इसमें मेरा क्या दोष?

''दोष तो मेरा है जो मैं तुम्हारे पल्ले पड़ गयी. अजी कैसे आदमी हो जो सुधरना नहीं चाहते. शहर में गांव लेकर क्यों घूमते हो जी?''

उसका कहा-सुना ठेंगे से, मैं लुंगी पहनकर आंगन में घूमने लगता हूं. वह मुझे पैंट पहनाने के लिए पीछे-पीछे दौड़ने लगती है. मैं भागता हूं और वह चकरघिन्नी होकर आंगन में गिर जाती है. नाटक का सीन पूरा हो जाता है, परदा गिर जाता है.

वह बेचारी कुछ न कुछ सिखाने के मूड में रहती है और मैं मूर्ख विद्यार्थी सा अगला-पिछला सब भूल जाता हूं. भूलना मेरी फ़ितरत में है तो मैं क्या करूं? वह क्यों मेरे क्रियाकलापों पर कर्फ़्यू लगाती रहती है?

मैं भी कुछ कम नहीं हूं जनाब, समझौता भी जल्दी कर लेता हूं. जानते हैं न, समझौता सबसे बड़ा हथियार है. बड़ी से बड़ी सरकारें भी वही करती हैं. हारे का हरिनाम है यह.

मेरे बाद श्रीमतीजी का निशाना टी.वी. के चैनल्स होते हैं. उनका मानना है कि उनमें आदमी और औरत दोनों ही छुप-छुपकर एक दूसरे का शिकार करते हैं. यह चोरी-चोरी आंख मिचौली कोई सम्मानजनक बात है क्या? अजी, इस छिछोरेपन को दिखाने की क्या ज़रूरत है? क्या सिखाना चाहते हैं भले आदमी, पूरब को पश्चिम बनाने में क्यों तुले हैं ये शरीफ़जादे-शरीफ़जादियां? इन्हें एक पति या एक पत्नी से पूरा नहीं पड़ता है क्या?

मैं फिर मज़े लेकर कहता हूं- 'मुझसे निडर रहो. मैं ठहरा देहाती आदमी, भला मुझ पर कौन शहरवाली डोरे डालेगी,ऐं!'

''इतने भी नौसिखिये नहीं हो जी.'' वह यह कहकर लजा जाती है, पूरी लाजवंती बन जाती है.

३१ मार्च १९४७,
दुइयापानी; जिला-नरसिंहपुर (म.प्र.)

प्रकाशन : प्रायः सभी विधाओं में स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन 'चिनम्मा' (कहानी संग्रह), 'अनुवांशिकी', (लघु कथा संग्रह), 'आम आदमी : नीम आदमी', (हास्य काव्य संग्रह), 'परिक्रमा' (बाल-किशोर उपन्यास), 'ककुभ' द्वारा जबलपुर के लघुकथाकारों की लघुकथाओं का संपादन. 'वर्ष २००९ की लघुकथाएं' का भी संपादन. आकाशवाणी जबलपुर छतरपुर (म.प्र.) से कहानियों, कविताओं का प्रसारण.

सम्मान : साहित्य लोक' परियावां प्रतापगढ़ से 'साहित्य श्री', 'शिवसंकल्प साहित्य परिषद', होशंगाबाद (म.प्र.) से 'कथाश्री', 'पाथेय' जबलपुर से 'सृजन-अलंकरण' तथा देश की विभिन्न संस्थाओं द्वारा सम्मान एवं सम्मानोपाधियां.

अनुवाद : लघुकथाओं का मराठी में अनुवाद एवं प्रकाशन, लघुकथाओं का निमाड़ी लोक वाणी में अनुवाद, संकलन प्रकाशनाधीन.

कुछ दिनों से इधर मुझे रोज़ सपने में एक गिरगिटान दिखाई दे रहा था. मैंने पत्नीजी से सपना शेयर किया तो वह हंसकर बोलीं - ''गांववालों को कीड़े-मकोड़े ही तो दिखाई देंगे. सब्र करो, कुछ दिनों में ही सांप, सियार, शेर सब दिखाई देंगे.''

अबकी बार नेहले पर दहला जड़ दिया गया था. मैं बुद्धू सा बग़लें झांकते रह गया था. ठीक भी है, कभी-कभार पत्नी को भी जिता देना चाहिए. इसे सांप-सीढ़ी

की तरह ही लेना चाहिए. सीधे निन्यानवे से गिरकर मज़े-मज़े नीचे चले आना चाहिए. अपनी इस अप्रत्याशित जीत पर पत्नियां ख़ुश भी ख़ूब होती हैं.

हां, तो गांववाला गिरगिटान आंगने में लगे मुनगे के झाड़ पर का निवासी था. मुझे आते-जाते देखकर अपना मुंह फुलाकर मेरा अभिवादन करता था. ऊपर-नीचे सिर हिलाकर मानो मुझे संदेश देता है कि हर किसी को ज़मीं-आसमां दोनों पर अपनी नज़र रखना चाहिए. ज़मीन के आदमी को आसमान की पकड़ रखना भी ज़रूरी है. उसका यह भाव मुझे अच्छा लगा था.

मैंने उससे दोस्ती बनानी चाही. पास बुलाया तो वह डगर-मगर चलकर मेरे पास चला आया. मैंने उसे प्यार किया और अपनी जेब में छुपा लिया. वह मेरे साथ खेत-खलिहान, हाट सभी जगह ठाठ से घूमता, नदी की गहराइयों में संग-संग तैरता. सच, आदमी को प्रकृति के संग जीने का कोई मौक़ा कदापि नहीं छोड़ना चाहिए. जलचर, थलचर, नभचर ये सभी प्रकृति के ही तो अंग हैं. इस फिलासफी ने गिरगिटान के साथ मेरी प्यार-मुहब्बत को और गहरा दिया था. इतिहास अपने-आपको दोहराता ज़रूर है. मुझे शहरवाले घर की बाऊंड्री वाल पर भी वैसा का वैसा गिरगिटान दिखाई देने लगा. मैंने उसे भी प्यार से बुलाया तो वह भी डगर-मगर चलकर मेरे पास चला आया.

मैंने किलककर कहा - ''अरे वाह बच्चू, तुम इधर भी आ टपके.''

इसने भी मेरी जेब में निवास बना लिया और मेरे संग-संग शहर की गलियों, कुलियां नापने लगा.

कुछ दिन ही हमारी यह दोस्ती चल पायी थी कि वह श्रीमती जी द्वारा ट्रेस कर लिया गया. ''भाग नासपीटे'', कहकर उन्होंने उस पर झाडुओं की झड़ी लगा दी.

गांववाला गिरगिटान मेरी दादी द्वारा पीटा गया था. 'भाग नासपीटे' कहकर उन्होंने भी उसे चलता कर दिया था. यानि दादी से लेकर मेरी धर्मपत्नी तक यह सदभावना रूपी दरख़्त वहीं के वहीं ठिठुरकर रह गया था. 'प्राणियों में सदभावना हो,' जैसा यह स्लोगन अपने आप में कैसा बेमानी होकर रह गया था, है न!

हां न, बेक़सूर प्राणियों को मारने के लिए हमारे हाथ कैसे कुलबुलाते रहते हैं. हाथी दांत, सांप-शेर की चमड़ी, जानवरों के सींग बेचनेवाले तस्कर, इनसे कैसे रहेंगे ये मूक प्राणी बचकर.

इधर मेरी कहानी का समापन शेष रह गया था. श्रीमती जी को बाज़ार भेजकर अपनी कहानी का अंतिम पैरा लिखने बैठ गया. मैं तब अपनी स्क्रिप्ट से चिपके बैठे गिरगिटान को देखकर उछल पड़ा.

''अरे वाह! तुम यहां चिपके बैठे हो, और मैं तुम्हें कहां-कहां नहीं खोजता रहा.'' पर यह क्या वह बिल्कुल भी हिल-डुल नहीं रहा था. उसका जिस्म अकड़ा हुआ था. बेचारा कब का ख़ुदा का प्यारा हो चुका था. मैंने तब उसकी अंत्येष्टि आंगन में ही करा दी थी. दूसरे दिन मेरी आंखें खुली की खुली रह गयीं. असंख्य गिरगिटानों ने हमें घेर लिया था. बाऊंड्री वाल, पेड़-पत्तों, गमलों पर चढ़े गिरगिटान हमें आग्नेय दृष्टि से घूर रहे थे. वह मरा हुआ गिरगिटान हमें एक बड़ी मुसीबत के हवाले कर गया था. वे सब मिलकर हमें ज़रूर कोई दंड देना चाहते थे.

''भई वाह! क्या एकता है इन मूक प्राणियों में'', इस मुसीबत के क्षणों में भी मेरे मुंह से अनायास निकल गया था.

यही एकता यदि हम आदमियों में होती तो आज हम कहां के कहां निकल गये होते. हममें से न कोई सिरफिरा होता न अन्यायी. कोई आतंक न होता और न आतंकवादी. हमारे घरों-आंगनों में न कोई निठारी कांड होता और न ही आरुषि जैसा हत्याकांड. सभी प्यार से सराबोर होते. भाई-चारे की मिसाल क़ायम करते, शैतानियत का कहीं नामोनिशान तक नहीं होता. न कोई महाभारत लड़ा जाता और न चक्रव्यूह गढ़े जाते. ऐसे भयानक खूंरेजी युद्ध क्यों लड़े जाते? हमारे घर-आंगन में ऐसा कुछ नहीं घटता जो अस्वीकार्य होता.

ये घर-आंगन न जाने क्यों बट जाते हैं. सरहदें खून से रंग जाती हैं. अपने श्राप क्या हिंदुस्तान-पाकिस्तान बन जाते हैं. बदले की भावना पीढ़ियों दर पीढ़ियों तक चलकर जीवन नर्क़ बना जाती है. कान के पर्दे फाड़ते हुए बम सैकड़ों ज़िंदगियां पलक झपकते निगल जाते हैं. हम तब गिरगिटान से डायनासौर में तब्दील हो जाते हैं.

''मुझे माफ़ करना भाइयों, मैं अपने दोस्त गिरगिटान की हिफ़ाज़त नहीं कर सका.'' कहकर मैंने गिरगिटान

समूह से हाथ जोड़कर माफ़ी मांग ली थी. मेरी आंखों से अश्रुधारा वह निकली थी. पश्चाताप की अग्नि में झुलसकर मैंने उन सबसे सच्चे मन से माफ़ी मांग ली थी.

ताज्जुब ! कितनी जल्दी गिरगिटान दल वहां से ग़ायब हो गया था. कितनी जल्दी उन्होंने हमारा इतना बड़ा अपराध क्षमा कर दिया था. वे सब मेरी नज़रों में एकाएक कितने बड़े हो गये थे. अरे वे काहे के गिरगिटान हुए, असली गिरगिटान तो हम हैं जो उनसे पल-पल रंग बदलना सीखे. कभी हां, कभी न कहकर ऐसे गिरे, गये बीते इंसान हो गये.

काश! यह बड़प्पन हम भी सीख जाते. यदि ग़ल्तियों को क्षमा करना हमें भी आ जाता तो हमारे ये घर-आंगन कितने महफ़ूज़ हो जाते. उनमें कहीं सड़न की बू नहीं आती और वे सुरभिमय होकर सौंदर्यबोध से भर गये होते.

एम.आई.जी., ८ विजयनगर,
जबलपुर (म.प्र.) ४८२००२
फोन : ९३०१८२२७८२, ९३०११२३९५८

कविता

बेहोशी

डॉ तिलकराज गोस्वामी

नर्म तौलिये में लिपटा
वह घूरे पर अचेत पड़ा था,
आठ-दस राहगीर व एक-दो महिलाएं
आश्चर्यचकित उसे देख रही थीं.
तभी एक फुसफुसाहट हुई-
बेचारा हरामी है नाजायज़ बच्चा है।
उस अभिशप्त पुतले में छुपे
ईसा-गौतम अथवा राम को
पहचानने को कोई इच्छुक नहीं था.
क्योंकि वह किसी महल या नर्सिंग होम के
नर्म गर्म बिस्तर पर नहीं
वरन धूरे पर पड़ा था,
और घूरा तो आख़िर घूरा ही होता है,
उसकी कोई वलदियत नहीं होती,
कोई पहचान नहीं होती,
कोई इतिहास नहीं होता.
जिस पर कुत्ते मूतते हैं
जिस पर मात्र कूड़ा ही फेंका जाता है.
पर, वह कैसी संवेदना थी
जिसने उस भीड़ को वहां इकट्ठा कर दिया था
क्या वह मात्र एक अनाम अबोध
शिशु की बेहोशी थी?
अथवा वह पूरी भीड़, पूरा समाज
पूरा देश घूरे पर अचेत पड़ा था?

'आकांक्षा', ९१सी /८ सी
सर्वोदय नगर, भारद्वाजपुरम,
इलाहाबाद- २११००६

जूते : दो लघु कथाएं

सस्ते जूते

जूतों की दुकान में चार-पांच आदमी घुस आये. बोले - 'सस्ते जूते दिखाइए तो!'

''सस्ते जूते, क्यों?' दूकानदार ने हैरत से पूछा.

''फिर क्या, महंगेवाले फेंकना है.''

खुन्नस

''जूतों का मौसम चल रहा है.''

''निकाल लो, जिसको अपनी खुन्नस निकालना है.''

''और क्या, कुछ होना-हवाना तो है नहीं.''

पार्क में बैठकर वे सभी अपनी-अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहे थे.

एम.आई.जी-८. विजयनगर,
जबलपुर (म.प्र.) ४८२००२

कहानी

इच्छा मृत्यु

// डॉ. प्रदीप अग्रवाल //

सुबह-सुबह लगातार बज रही फ़ोन की घंटी से मेरी नींद टूटी. कुछ झुंझलाते हुए फ़ोन उठाने पर पता चला, विंध्याचल के अपने आवास में मामा-मामी दोनों गहरी बेहोशी की हालत में फर्श पर पड़े पाये गये हैं. स्थानीय डॉक्टर ने उनके बचने की संभावना नगण्य बतायी है.... जितनी जल्दी हो सके मैं वहां पहुंच जाऊं.

मैं अतीत की स्मृतियों में मामी-मामा के स्वरूप को ढूंढ़ने लगा. तीस वर्ष पहले की बात...! यामिनी राय की चित्रकृति-सी मामी की छवि मानस में तैर उठी. उन्होंने ऐसा क्यों किया? मूढ़ से मूढ़ हताश व्यक्ति के पास भी मुक्ति के कुछ न कुछ उपाय होते हैं फिर मामी या मामा ने ऐसा क्यों किया?

मैं आज भी नहीं भूला वह शाम, जिस शाम मामी जी हमारे घर आने वाली थीं. हम बच्चे उत्साहभरी उत्सुकता से शाम की प्रतीक्षा कर रहे थे, जब मामी सासाराम से आने वाली ट्रेन से पास के रेल्वे स्टेशन तक आयेंगी, और फिर रिक्शे से हमारे घर आयेंगी.

मामा जी, हमारे दूर के रिश्ते के मामा थे. पर अपने विनोदी, मिलनसार स्वभाव के कारण सभी बच्चों के ही नहीं, बड़ों के भी मामा बन गये थे. मैं भी उन्हें मामा जी कहता था और मेरे चाचा जी भी. धोती कुर्ते में सजे मामा जी के गले में पड़ी सोने की मोटी चेन उनकी धनाढ्यता का बखान करती रहती थी. कुर्ता सफ़ेद या क्रीम कलर का रेशम के कपड़े होता था, और धोती झकाझक सफ़ेद अद्धी की. उनके चेहरे पर बने बड़ी माता (चेचक) के दाग, ललाट पर लगे सिंदूरी त्रिपुंड टीके की भव्यता में ओझल हो जाते थे. मामा जी लगभग एक माह से हमारे घर पर ही खाना खा रहे थे. उनका सर्राफ़े का पुश्तैनी काम बहुत अच्छा चल रहा था, पर चार भाइयों के एक ही व्यवसाय करने के कारण कैमूर में नक्सली एवं आपराधिक गतिविधियां बढ़ने के कारण, उनके पिताजी ने उनसे नये शहर में कारोबार शुरू कराया था. और अपने भाइयों में सबसे बड़े, मामा जी को इसका ज़िम्मा दिया था.

मेरे पिताजी और अन्य पड़ोसियों के सहयोग से मामाजी का व्यापार तेज़ी से बढ़ रहा था. सन् उन्नीस सौ सढ़सठ के अकाल में जब गांव-देहात में हाहाकार मचा था, ग़रीबों-देहातियों की मांओं, बहुओं के चांदी के सस्ते कंगन, बिछुआ, कनफूल, नकबेसर, गले का हार, कमरबंद सभी धीरे-धीरे अकाल की भेंट चढ़ रहे थे. सही शब्दों में सर्राफ़ों की चांदी कट रही थी. गहने बिक भी रहे थे तथा सूद पर रेहन भी रखे जा रहे थे. सूद पर गिरवी रखने के काम में, पूंजी से मजबूत मामा जी के सामने स्थानीय सुनारों का टिकना असंभव था. माल से मालामाल मामा जी हम बच्चों को भी मिठाइयों, टॉफी, फलों की सौगात दिल खोल कर देते थे. सब कुछ ठीक चल रहा था, पर हमारे परिवार की साधारण गृहस्थी में, मेरी दादी को उन्हें हफ़्तों से मेहमान की भांति खिलाना अखर रहा था और एक दिन उन्होंने कटाक्षपूर्ण भाषा में याद दिला ही दी, 'बहुरिया के भूला गईलअ का?' इसी उलाहने का परिणाम था जल्दी-जल्दी में दो कमरे के किराये का मकान एवं गृहस्थी के सामानों का इंतजाम तथा मामी जी का आगमन. पर इस शहर में मामी जी के पैर पहले हमारे घर में पड़ने वाले थे, तभी वे अपने घर जाने वाली थीं.

शाम का धुंधलका छा रहा था. दर्जनों बच्चे गली में लुका-छिपी खेलते, धमाचौकड़ी मचा रहे थे. एक बच्चा खेल में बेईमानी की बात कह कर कोने में बैठा सुबक रहा था और दो-एक बच्चे उसे फुसलाने का नाटक करते हुए खिखिया रहे थे. इस शोर-गुल, आपा-धापी के बीच दो रिक्शे गली में, हमारे घर के कुछ दूर आ कर रुके. रिक्शों की आवाज़ सुनते ही बच्चे खेल-तमाशा भूल गये और ढीठ दर्शकों की भांति रिक्शे के पास खड़े हो गये, मानो कोई नया तमाशा होनेवाला हो.

पीछे वाले रिक्शे पर मामा जी बक्सा, झोला, सूटकेस के साथ बैठे थे और आगे वाले रिक्शे पर एक-दो सामान के साथ मामी जी. सुनहरी सिंदुरिया बनारसी साड़ी में लिपटी मामी जी का चेहरा लगभग पूरा ही घूंघट की ओट में था, सिर्फ़ गोरी ठुड्डी का हिस्सा झलक रहा था. हम उन्हें देखने को अधीर हो रहे थे. और जब उन्होंने पैर टिकाने के लिए नीचे ज़मीन देखने के लिए अपना घूंघट हटाया... मैं अवाक् रह गया....! गोरे अंडाकार चेहरे पर तीखे नाक-नक्श, प्यारी भौंहे और यामिनी राय के चित्रों की नायिकाओं की भांति नावनुमा प्यारी आंखें. उम्र की वयः संधि पर मेरा सौंदर्यबोध जगना शुरू हो चुका था. धर्मयुग-हिंदुस्तान जैसी

पत्रिकाओं में छपे तारिकाओं के चित्रों पर मेरी आंखें रुक जाती थीं. उस समय मेरी आंखें सामने खड़ी सौंदर्यमूर्ति के माथे के बीच बने बड़े से लाल टीके पर मानो चिपक गयी थीं. प्रेम एवं आसक्ति जैसी भावनाओं का तो मुझे उन दिनों ज्ञान नहीं था, पर मामी जी के उस सौंदर्य ने मुझ पर एक मोह-पाश अवश्य फेंक दिया था.

मामी जी घर आयीं और मेरी मां-चाची के साथ रसोई घर में ही बैठीं, जहां संयुक्त परिवार की सभी स्त्रियां, मिलजुल कर रात का खाना पका रही थीं. बड़े, बच्चों और मेहमानों को मिलाकर बीस-पच्चीस लोगों के लिए, तवे पर सिंकी पूड़ियां, रसदार सब्जी, चटनी रात के खाने में बननी थी. मामी भी उनसे आग्रहपूर्वक चका-बेलन लेकर पूड़ियां बेलने में लग गयी थीं. बच्चे अधूरे खेल को पूरा करके, लालटेन की रोशनी में किताब-कॉपी खोल कर पढ़ने बैठ गये थे.

अगले दिन मामी अपने किराये के मकान में चली गयीं. शाम को मैं कुछ बच्चों के साथ कुछ उत्सुकता और कुछ कौतूहल के भाव से उसने मिलने चला गया. मामी जी ने अत्यंत स्नेह एवं वात्सल्य के भाव से हमें चूड़ा-चबेना और मिठाइयां दीं. मेरा एवं मामा का नाम एक ही होने के कारण वे मुझे इंदर न कह कर पुरंदर कह कर बुलाती थीं. हिंदू नारियों के रक्त में प्रवाहित होती रूढ़िवादिता ही उन्हें पति का नाम लेने से रोकती है. परंतु इसी भावना तथा नाम की साम्यता के कारण उनका स्नेह मुझ पर कुछ ज़्यादा ही बरसता था.

कुछ ही दिनों बाद परीक्षा के द्वारा राज्य सरकार संपोषित आवासीय विद्यालय में अध्ययन हेतु मेरा चयन हो गया और मैं घर से कुछ दूर होस्टल में रहने चला गया. नये परिवेश में, नये लोगों के बीच तथा पठन-पाठन की व्यस्तता में मेरी स्मृति में मामी की छवि धूमिल हो गयी. मैं अपने घर वर्ष में केवल दो बार गर्मी एवं सर्दी की छुट्टियों में आया करता था. मेरे पिता जी अत्यंत सामाजिक प्रवृत्ति के थे एवं सामाजिकता का धर्म पूरी तन्मयता से निबाहते थे. शायद उन्हीं की प्रेरणा से जब भी छुट्टी में घर आता था, सभी पड़ोसियों एवं रिश्तेदारों से मिलने नमस्ते, प्रणाम, चरण-स्पर्श करने जाया करता था. बीते समय के साथ छुट्टियों में आने के बाद तथा, जाने के पहले भेंट मुलाकात एक रूटीन सा बन गया. छह-छह माह के अंतराल पर मिलने से मैं लोगों के एपीयरेंस, स्वरूप एवं व्यक्तित्व में आते परिवर्तनों को भी देखा करता था. गली के बच्चे बच्चियां धीरे-धीरे बड़े हो रहे थे. मुहल्ले के कुछ भैया छोटी-छोटी परचून, पेंट, बिजली के सामानों की दूकान खोल रहे थे. बुजुर्गों के केश में सुनहरी धारियां बढ़ रही थीं. मामाजी ने ज़मीन ख़रीद कर नया मकान बना लिया जो अब जुड़वां घर-दुकनियां था. साथ ही मैं

प्रदीप अग्रवाल

५ जुलाई, १९५८, गढ़वा (झारखंड);
एम.बी.बी.एस., एम.डी. (मेडीसिन),
एम.डी. (रेडियोलॉजी)

लेखन - मुख्यतया चिकित्सा - शोध विषयों पर एवं कुछ लघु कहानियां. किसी भी पत्रिका में प्रकाशित 'इच्छा मृत्यु', पहली कहानी.

एक और परिवर्तन देख रहा था - मामी जी के चेहरे से ख़ुशी ग़ायब हो चुकी थी और वहां मुस्कान की जगह अवसाद की धूमिल छाया तैरती रहती थी. घर-गृहस्थी के काम काज में लिपटी मामी जी यंत्रवत काम करती थीं, पर उनकी आंखों में एक अजीब सा सूनापन भरने लगा था, जो मेरे अबोध मस्तिष्क के लिए अबूझ पहेली सा था.

दिन, महीने, साल अपनी गति से बढ़ते जा रहे थे. मैं भी कक्षा की सीढ़ियां चढ़ता गया. दो-तीन वर्ष बीतते-बीतते मेरे एक चाचा का विवाह हो गया और उन्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति भी हुई थी. इस बार जब छुट्टियों में घर गया तो परिवार में पुत्र की जन्म की ख़ुशी में छठी के उत्सव का आयोजन किया गया था. आयोजन कुछ बड़े पैमाने पर किया गया था. सभी रिश्तेदारों, पड़ोसियों एवं नगर के प्रतिष्ठित नागरिकों को सहभोज का नेवता दिया गया था. सैकड़ों लोग आये थे. भोज की दर्जनों पंगतें लगी थीं. सभी ने छककर सुस्वाद भोजन का आनंद लिया था. मामा जी भी हमारे परिवार की ख़ुशियों में शरीक होने आये पर पर उनके साथ मामी नहीं आयीं. मेरे मन में कुछ खटक रहा था. मेरे मस्तिष्क में कुछ प्रश्न उठ रहे थे. इतने मिलनसार स्वभाव की मामी आख़िर नवजात शिशु के छठी-समारोह में क्यों नहीं आयीं? क्या मेरी वाचाल दादी ने कुछ कह दिया? किस बात के ग़म में मामी घुलती जा रही हैं?

अनुत्तरित प्रश्नों के साथ एक बार फिर मैं अपने होस्टल चला गया. मामी की छवि मेरे मानस पटल पर तैरती रही. हल्के-फुल्के विश्लेषण और चाचा के विवाह तथा पुत्र प्राप्ति से तुलना

कर मुझे इस बात का आभास हो गया कि मामी की उदासी का कारण संतान का अभाव है. संकोच के कारण मैं अपने मित्रों से इस विषय पर बात नहीं करता था, पर जीव-विज्ञान की पढ़ाई ने विवाह एवं पुत्र प्राप्ति के तार्किक संबंध को स्पष्ट कर दिया था.

अगली बार जब मैं छुट्टी में घर आया तो पता चला मामी, मामा के साथ इलाज कराने बनारस गयी हुई हैं. लगा इस बार उनसे मुलाकात नहीं होगी, पर मेरे होस्टल लौटने के पूर्व वे इलाज, जांच-पड़ताल कराके आ गयी थीं. इस बार उनके चेहरे पर बहुत ख़ुशी तो नहीं थी पर एक आश्वस्ति का भाव था. मानो ज़िंदगी में ग़म तो था, पर ग़म ज़िंदगी का एक हिस्सा था. झलक रहा था, बच्चा पैदा कर पाने की कमी मामी में नहीं थी. स्त्री का बांझपन भारतीय समाज में उसे परित्यक्ता बना देता है, पर पुरुष की नपुंसकता को पति-परमेश्वर की अवधारणा में छिपा दिया जाता है. मामी जी ने स्वयं को संवेदना शून्य बना कर इस अग्राह्य परिस्थिति के लिए तैयार कर लिया था.

समय बीतता गया. स्कूल के बाद कॉलेज की पढ़ाई करके मैंने एम.बी.बी.एस. की डिग्री प्राप्त कर ली. मेरी भी गृहस्थी पति-पत्नी और नवजात पुत्र के सितारों से सज गयी. उम्र बढ़ने के साथ-साथ मामा का शुगर-ब्लडप्रेशर के साथ नाता जुड़ गया और मामी अवसाद की शिकार होती गयीं. मामा-मामी प्रायः इलाज के सिलसिले में पटना आते थे और हमारे साथ ही ठहरते थे. सुबह-सुबह पूरे घर में झाड़ू-बुहारू किया देख हमें सुखद आश्चर्य होता था. मामा जी स्वेच्छा से सफ़ाई भी कर देते थे और गृहस्थी में सहयोग के लिए हमारे बार-बार विरोध करने पर साग्रह सब्जी-फल-अनाज आदि ला दिया करते थे. मामी जी नवजात शिशु की देखभाल अपने हाथ में लेकर मेरी पत्नी का काम हल्का कर देती थीं. ऐसे में मामी जी के चेहरे पर खिलती ख़ुशी की रंगत देखते बनती. मामा-मामी रहते तो दो-तीन दिन ही थे, पर अपनापा सगों से भी बढ़कर हो जाता था.

समृद्ध हिंदू परिवार में एक भाई के पुत्र नहीं होने पर स्थितियां अत्यंत विकट हो जाती हैं. बुढ़ापे में कौन देखभाल करेगा? संपत्ति का वारिस कौन होगा? क्या किसी भांजे-भतीजे को गोद ले लें? या अनाथाश्रम से बच्चा ले आयें? सैकड़ों प्रश्न लगातार आंखों के सामने तैरते रहते हैं. जो अपना नहीं है, उसे अपना कैसे मान लें? गोद लेने वाला स्नेह बना ले, तो क्या गारंटी है कि गोद में आने वाला भी स्नेह देगा? समाज-परिवार के दबाव में कैसे किसी को अपना लें? इन्हीं अनुत्तरित प्रश्नों के द्वंद्व में मामी-मामा डूबते उतराते रहते थे.

कुछ वर्ष के बाद एक बार फिर दूसरे शहर में मामा जी से मुलाकात हुई. अवसर था मेरे एक मित्र की भतीजी का मामा जी के भतीजे से विवाह के प्रस्ताव का. दोनों पक्षों से मेरा गहरा परिचय होने के कारण, मेरी भूमिका कुछ-कुछ मध्यस्थ जैसी थी. मुझे थोड़ा आश्चर्य हुआ जब मामाजी का परिचय भतीजे के अभिभावक के रूप में किया गया. संवादों में मामा जी की भूमिका ज़्यादा सक्रिय नहीं थी और मामी लगभग तटस्थ थीं. पर उस दिन रस्मों में लड़के के पिता की भूमिका मामाजी ने ही निभाही. मामा जी ने कन्या को धन-धान्य के साथ अपार स्नेह दिया. अपना सब कुछ दत्तक पुत्र के नाम कर दिया.

प्रबल सामाजिक भावना के कारण मामा रोटरी, लायन्स आदि क्लबों के सेवा कार्यों में कुछ धन देते रहते थे और मामी उनकी मूक सहयोगिनी बनी संतुष्ट पत्नी की भूमिका निभाती रहीं. परंतु उनके दत्तक पुत्र को हरिश्चंद्री दानवीरता नहीं सुहाती थी. आज के युग की स्वार्थपरक मानसिकता में ईमानदार सामाजिक कार्य बेवकूफी माने जाने लगे हैं. भले ही बेईमान समाजसेवकों, जो इसे कमाई का जरिया बना लेते हैं, की जय-जयकार होती है तथा अख़बारों-पत्रिकाओं में चित्र छपते हों.

बुढ़ापा एवं बीमारियों का क्लेश अपनों की उपेक्षा के कारण दंश जैसा बन रहा था. जीवन की रिक्ति जीवन के प्रति विरक्ति बन रही थी. पता नहीं दंपति के व्यक्तिगत निर्णयों में परिवार की दखलअंदाजी किस हद तक उचित है परंतु यह सच नंगा हो चुका है कि आधुनिक व्यक्तिपरक समाज में संयुक्त परिवार कितने खोखले हो उठे हैं. संभवतः इसी कारण मामा-मामी अपने अधिकांश दिन विंध्या देवी के मंदिर के समीप एक कुटीर में बिताया करते थे.

अभी एक हफ़्ते पहले ही विंध्यावासिनी मां के दर्शन हेतु मैं विंध्याचल गया था. अन्य बातों के अलावा डॉक्टरी बातें भी हुई थीं. मैंने उन्हें साफ-साफ बताया था कि गहरे लाल रंग की टिकिया शुगर की है और इन्हें अधिक मात्रा में लेने से जान भी जा सकती है. ये टिकिया मामा जी को नाश्ते-खाने के बाद ही देनी है. मामी जी की डिप्रेशन की गोली हल्के नीले रंग की थी. इन दवाओं के पत्तों पर नाम अंग्रेजी में और बहुत ही छोटे-मोटे हरफ़ों में लिखे होते हैं जिन्हें पढ़ना बुजुर्ग ही क्या, युवकों के लिए भी बिना चश्मे के कठिन होता है.

और आज!

डॉक्टरों ने बताया मामी का ब्लड शुगर बहुत गिरा हुआ था. उनके बिस्तर के पास ब्लड शुगर केवल गिराने वाली लाल गोली के कई खाली पत्ते बिखरे हुए थे. जबकि मामा जी का शुगर बहुत बढ़ा हुआ था और उनके बिस्तर के समीप डिप्रेसन की

नीली गोलियों के खाली पत्ते छितरे थे...

ऐसी भयंकर ग़लती! मैं किंकर्तव्यविमूढ़ था, फिर भी मेरे मानस में प्रश्नों के बुलबुले उठने लगे थे. यह अनजाने में की गयी ग़लती थी या जान बूझकर किया गया प्रयास? इतनी तो नासमझ नहीं थीं मामी जो लाल और नीली गोलियों में अंतर नहीं कर पातीं. आख़िर वे कौन सी परिस्थितियां थीं, या कौन सा टि-गर था जिस कारण मामी जी या दोनों ने यह घातक निर्णय लिया. जिस दंपत्ति ने कई दशक ग़मों से समझौते करते हुए गुज़ार लिये. हर छोटी ख़ुशी को अपना भाग्य समझ कर ईश्वर को धन्यवाद दिया, वह जीवन के उत्तरार्ध में इतना असहाय क्यों हो उठा? क्या वे उद्देश्यहीन जीवन जीने की निरर्थकता से ऊब चुके थे. कहां गयी संयुक्त परिवार में वृद्धों की सुरक्षा की दलीलें? क्या कानून बनाकर स्वेच्छा मृत्युवरण रोकना संभव है?

डॉक्टरों ने प्रयास करके मामाजी को तो बचा लिया पर मामी जी इस सांसारिक माया से मुक्त हो गयीं....

ए-१०२, साकेत प्लाजा,
जमाल रोड, पटना-८०००१
फोन - ९३३४२१९०८०, ०६१२२२२०३६७

कविता

हद हो गयी

राधिका रमण नीलमणि

एक समाचार पत्र के
छपते-छपते कॉलम में
यह विलक्षण ख़बर छप गयी
''चीन के एक शहर में
चीनी उपमेयर, ली चेन लॉग्र को
घूस लेने के जुर्म में
फांसी दे दी गयी.''
ख़बर पढ़
कक्का स्तंभित रह गये
आश्वस्त होने पर
उन्होंने कहा - ''वह महामूर्ख था
घूस लेकर सीधे यहां भाग आता,
जितने बड़े-बड़े दिग्गज, धाकड़ राजनेता हैं
सभी वन वाई वन
घूस लेकर डकार जाने का
एक से बढ़कर एक
नवीन से नवीनतम उपाय बता देते,
फिर वह मूछें ऐंठ, सीना तान
शान से अकड़ते चलता
घूस लेने पर फांसी?
बाप रे बाप हद हो गयी
यह सरासर अत्याचार है,
घूस लेना देना
मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है,
भला घूस मनुष्य नहीं लेगा,
तो क्या जानवर लेगा?
सौ परसेन्ट असंभव बात
लगती है,
चीन के वाशिंदे बड़े खूंख़्वार हैं
कलयुग को जीने नहीं देंगे?
फिर हमारे देश का क्या होगा?
यहां तो गोल्ड मेडलिस्टों की भरमार है
हे भगवान
यह तो मानव विहीन हो जायेगा
मानवाधिकार का है यह हनन
होना चाहिए इस पर गंभीर मनन,
विश्व व्यापी जन आंदोलन,
मानवाधिकार आयोग द्वारा
जांच आयोग का गठन,
त्वरित गति से
निष्पक्ष न्याय की मुनादी
दिवंगत उपमेयर के आश्रित
मुआवजा के हों हकदार
एक को सरकारी नौकरी
दूसरे को नकद राशि
दे वहां की सरकार,
दूध का दूध, पानी का पानी
तभी तो न्याय की गरिमा बनी रहेगी
और नया मानवाधिकार भी
रहेगा अक्षुण.

द्वारा डॉ. कपिल देव प्रसाद
स्पीकर रोड, नया टोला,
मुजफ्फरपुर-८९२००१

कहानी

स्लम डॉग

।। पी. डी. बाजपेयी ।।

रात के १२ बजे रसोई की डिंग-डांग घड़ी ने १२ घंटे बजाये और मैं खड़ा हो गया. इस समय तक सड़क पर गाड़ियों की गहमा-गहमी लगभग शांत-सी हो जाती है. इक्के-दुक्के गाड़ीवाले, या हीरो टाइप छोकरे अपनी मोटर-साइकिल के सायलेन्सरों को निकालकर भयानक आवाज़ का मज़ा लेते और सोते हुए लोगों को जगाते निकल जाते हैं. यह सड़क जो अधिक चौड़ी नहीं है अपने दोनों ओर रिहायशी भवनों को समेटे पसरी पड़ी है. हर इमारत में औसतन ३०-४० फ्लैट हैं इसलिए इन छोकरों की गाड़ियों से सायलेन्सर-रहित और यदा-कदा सड़क कूटनेवाले इंजिन के निकलने से वह भी मध्य रात्रि में निवासियों की नींद में ख़लल हो जाना स्वाभाविक है. अब तो इस हीरोइन के कारण नींद में खलल डालने का कार्यक्रम दैनिक हो गया है. सब बड़बड़ाते हैं.

अपनी बिल्डिंग के बगल वाली निर्माणाधीन बिल्डिंग का गेट मेरी खिड़की के ठीक तिरछे, नीचे खुलता है. इसलिए हीरोइन की गतिविधि इतनी स्पष्ट दिखाई देती है कि न चाहते हुए भी कदम खिड़की पर आ जाते हैं. लगभग रोज़ ही एक रिक्शे में वह प्लास्टिक के दो बड़े थैलों में, मुर्ग़े की टांगें और बोटियां लाती है. इस गेट पर ऑटो रिक्शा छोड़कर वह खड़ी हो जाती है. धीरे से ही पुचकार की आवाज़ से सड़क के ८-१० आवारा कुत्ते आ जाते हैं. एक-एक कर टांग व बोटी निकाल-निकाल कर उन्हें खिलाने लगती है. उस समय वे कुत्ते आवारा नहीं लगते हैं. कूं-कूं करते दुम हिलाते इस अन्नदात्री का मन ही मन, वंदन करते रहते हैं. मज़े से गोश्त खाते रहते हैं.

ख़ूबसूरत हीरोइन का अंदाज़ भी निराला है. हाई हील की महंगी सेंडल, रोज़ बदलते महंगे सलीक़े के ब्रांडेड कपड़े, अति आधुनिक, किसी को भी आकर्षित करने के लिए पर्याप्त हैं. एक-एक कुत्ते से वह बड़ी मनुहार से बातें भी करती है, 'तेरे को अभी-अभी दिया न! फिर क्यों इसका छीनता है,' 'हां आं. तेरे को नई मिला डोंट वरी, ये लो, कल और अपने दोस्त को लाना.' 'कल तू नई दिखा था क्यूं?' आदि हर एक से नाता रखना उसकी ख़ूबी थी. आवाज़ इतनी बुलंद थी कि सारी बातें दो माले पर भी स्पष्ट सुनाई देती थीं. शुरू में कमरे की ट्यूब जलाकर मैं जब देख रहा था तो उसने अनुभव किया कि मैं खिड़की पर खड़ा हूं. मेरी ओर वहीं से देखकर चिल्ला कर बोली, 'बेचारे ये भी प्राणी हैं, इनको भी भूख लगती है. आप भी कभी-कभी खाना दे दिया करो.' मेरी किसी प्रकार की प्रतिक्रिया न देख कर क्रोधित होकर चिल्लायी - 'बिल्डिंग में रहता है दया नाम की चीज़ है ही नहीं. जंगली कहीं का!' मैं सकपका गया. तुरंत लाइट बंद कर के बिस्तर पर आ गया. अपनी इस नयी उपाधि ने मुझे आंदोलित कर दिया. अंग्रेज़ी में 'बिच' नाम की गाली, अनायास ही आ गयी ज़ुबान पर. दरअसल, कुत्तों के बीच, वह भले ही फिट न हो रही हो, पर यह गाली अवश्य फिट हो रही थी. फिर भी, अगले दिन भी उसे देखने का मोह रोक न सका. लाइट बुझाकर खिड़की पर खड़ा हो गया और फिर तो रोज़ ही खड़ा होने लगा. लगभग आधे घंटे में दावत निपटा कर वह चली जाती थी पैदल ही... रिक्शा मिलता तो रिक्शे से!

इस बीच मुझे यह महसूस हुआ कि उसकी कृपादृष्टि एक काले कुत्ते पर विशेष थी. यह बात शनैः शनैः अन्य कुत्तों को भी मालूम हो चुकी थी. क्योंकि काले कुत्ते की ओर डाली गयी बोटी के लिए क्या मजाल कि कोई अन्य कुत्ता झपट्टा मारे. काला कुत्ता जब नहीं खाता तो अपनी हीरोइन बोटी हाथ में लेकर उसके पीछे-पीछे जाकर ज़बरदस्ती उसके मुंह में ठूंसने का प्रयास करती. एक दो नख़रों के बाद वह कुत्ता भी उसे खा लेता था. आश्चर्यजनक रूप से उन दोनों में दोस्ती थी. शायद अन्य कुत्ते उससे जलते हों.

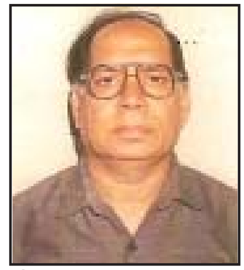

२ मार्च १९४५, कानपुर (उ.प्र.);
एम.ए. (राजनीति विज्ञान)

प्रकाशन / लेखन : 'कथाबिंब' के कुछ अंकों को पढ़कर कहानी लेखन की कोशिश स्वरूप यह पहली कहानी. पूर्व में कुछ गीत, कविताएं, दोहे तथा ग़ज़लें आदि भी लिखीं, 'जनसत्ता', 'न.भा.टा.', 'नवभारत' आदि समाचार-पत्रों में निरंतर विभिन्न विषयों पर बेबाक टिप्पणी के साथ १००० से अधिक पत्रों का प्रकाशन.

अभिरुचि : अच्छी कहानियां पढ़ने का शौक, पुस्तकों को एकत्रित करने की प्रवृत्ति, जो कभी-कभी पारिवारिक वाद-विवाद का कारण भी बनती है.

अन्य : १९६९ से मुंबई में निवास. रा.कृ.बैंक में ३१ वर्ष अधिकारी के रूप में कार्य. २००१ में सेवा निवृत्ति उपरांत एक असफल लघु फ़िल्म का निर्माण.

अपनी बिल्डिंग में नीचे क़तार में कई दुकानें हैं. पहली दुकान किराने की है. जिसका मालिक जैन है. प्याज़ भी नहीं खाता. ४-५ महीने पूर्व तक वह इसी दुकान के सामने दावत देती थी. क्योंकि काला कुत्ता इसी दुकान पर मंडराया करता था, उसे रोटी या बिस्कुट का नाश्ता मिलता था. दुकान के चैनल और शटर के बीच जो लगभग दो-ढाई फीट का सुरक्षित गलियारा है, उसी में सोता था रात्रि में. उन दिनों, वह शुरू में कुत्ते को बाहर बुलाकर खाना देती थी किंतु बाद में और भी उदार हो गयी और वहीं चैनल के भीतर ही उसे खिलाने लगी और जाते समय रात्रि में और खाने के लिए आठ-दस टांगें और बोटियां वहीं डाल भी देती थी, जो आवश्यक नहीं कि काला कुत्ता सभी खा ले. सुबह जब सात बजे दुकान खुलती थी तो उन जैन महाशय का मूड देखते बनता था. दो चार दिन तो कैसे भी साफ़ करवाया. फिर उन्होंने पुलिस की मदद मांगी. पुलिस ने समझाया कि पहले देखो कौन यह करता है. ये बोटियां कहां से आती हैं, तुम्हारी दुकान पर? इस कारण एक दिन वह अपनी पत्नी व दो जवान बेटों के साथ, दुकान बंद करके वहीं फुटपाथ पर चहल-क़दमी करने लगा. उस दिन वह साढ़े बारह बजे आयी. और अपने चिरपरिचित अंदाज़ में पुचकार कर अपने प्यारों को बुलाने लगी. बिल्डिंग के अन्य सदस्य भी जैन महाशय के पक्ष में उतर आये थे. जैन महाशय ने धीरे से ही अनुरोध करने का साहस किया क्योंकि वह उस दिन एक लंबी कार से उतरी थी और बला के कपड़ों में सजी हुई थी. जैन साहब की क्या किसी की भी हिम्मत नहीं पड़ी ज़ोर से बोलने की. जब उसे बताया गया कि सोसायटी के सभी लोग शाकाहारी हैं अतः जो भी वह करे आगे साफ़ पड़े मैदान में, जहां निर्माणाधीन बिल्डिंग है, कुत्तों को खिलाये. इस पर वह तार सप्तक में भड़की- 'वेजीटेरियन! ये तो तुम लोगों का नसीब, ये जीव हैं इनको भी हक़ है अच्छा खाने का, मनपसंद खाने का. तुम लोग क्या देते हो रोटी-बिस्कुट', और फिर अंग्रेज़ी में जो भाषण दिया सभी की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी. किसी ने आपस में ही कानाफूसी करके गुजराती भाषा में पुलिस को सूचित करने की बात कही. उसने सुन ली. फिर क्या था गुजराती भाषा में उसकी वाणी ने सबकी दुम दबा दी. बोली, 'पुलिस में अपनी बहुत पहुंच है. तुम लोग क्या करेगा? जा पुलिस में!' इतना कहते-कहते उसने गाड़ी की डिक्की से दो बैग मुर्ग़े की टांगें और बोटियां निकालीं और कुत्तों के लिए इधर-उधर नज़र दौड़ाने लगी. कुत्ते शायद समझदार थे. दूर-दूर से तमाशा देख रहे थे. पास नहीं आये. स्थिति असहनीय हो रही थी. जैन महाशय की पत्नी जो अब तक मर्दों की मर्दानगी से क्षुब्ध सी हो चली थीं अचानक हरकत में आ गयीं. उस हीरोइन के पास जाकर एक ज़ोरदार झापड़ रसीद किया. उसका चश्मा छिटक कर दूर जा गिरा. वह चीख़ने लगी. सभी मर्द हक्का-बक्का होकर देखने लगे. उसका ड्राइवर बाहर निकल आया. उसने नज़ाकत समझी और अपनी मेम साहब को समझाने के अंदाज़ में उनके पास गया. मगर वे तो और ख़ूंखार

नज़र आ रही थी. वह चश्मा उठाकर वापस आती उसके पहले एक और झापड़ उसके दूसरे गाल पर पड़ा. इस बार, कुछ ज़ोरदार था. वह भरभरा कर गिर गयी. ड्राइवर उसे उठाने के लिए लपका. इस पर मिसेस जैन ने गरजती आवाज़ में कहा, 'उठाना है तो इन दोनों थैलों को उठा. ये हरामज़ादी अपने आप उठेगी!' ड्राइवर को कुछ समझ नहीं आ रहा था, किंकर्तव्यविमूढ़ सा, उसने चुपचाप थैले उठाये और वापस डिक्की में रख दिये.

क्रोध में उफ़नती हीरोइन उठी, बैटरी डाउन हो गयी थी, 'मैं देख लेगी तुमको, तुम सबको देखना मैं क्या करती है...' आदि, मिसेस जैन एक बार पुनः दहाड़ीं और उसकी ओर लपकीं, उनके हाथ में न जाने कहां से एक डंडा आ गया था. सबने देखा उन्होंने उसे ऊपर उठा लिया और हीरोइन के सिर पर मारतीं इसके पहले वह छिटक कर भाग खड़ी हुई. हां एक बात... जब वह दूसरा थप्पड़ खाकर गिरी थी तो श्रीमती जैन का नाम पूछ रही थी, 'क्या नाम है तुम्हारा?' मिसेज जैन शायद अपना नाम डंडे से बताना चाहती थीं. वह भाग खड़ी हुई ड्राइवर ने गाड़ी नज़दीक लाकर मेमसाब के लिए दरवाज़ा खोला. मेमसाब ड्राइवर को थैंक्यू कहना न भूलीं और गाड़ी में धंस गयी. गाड़ी फुर्र!

सबके चेहरों पर चिंता छा गयी. पर सबने श्रीमती जैन की जयजयकार की. किसी ने अपनी ओर से राष्ट्रपति पुरस्कार की भी घोषणा कर दी. ख़ैर अगले चार-पांच दिन हिरोइन नहीं आयी. छठे दिन उसने फिर लंगर खोला. पर जैन की दुकान के सामने नहीं, बग़ल की निर्माणाधीन बिल्डिंग के गेट के सामने जो हमारी खिड़की के तिरछे था. फिर काले कुत्ते को लाड़ करने लगी. 'हाय मेरा बेटा पांच दिनों से भूखा था, आय एम सॉरी बेटा, डोन्ट वरी, बाज़ूवाले कुत्ते मना कर रहे थे. उन्होंने मुझे मारा भी तुमने देखा ना. मैंने माफ़ किया उसे. बच्चों के लिए मां को सब कुछ करना पड़ता है. अब मैं इधर ही आयेगी. तुझे खिलाने को उधर नई जाना.' कुछ कुत्ते बोटियां चबा रहे थे. कुछ उसकी बात शायद समझ रहे थे. दो-ढ़ाई महीने यूंही बीत गये. मेरी अब डबल ड्यूटी हो गयी. दिन में ऑफिस और आधी रात के बाद हीरोइन की कलाकारी. आदत सी हो गयी. मैं क्यों चला जाता था रात को बारह बजे खिड़की पर, मैं ख़ुद नहीं समझ पाता था. स्थिति यह थी रात के बारह बजे मैं अब उसकी प्रतीक्षा करने लगा. मैं समझ नहीं पाता कि मैं उस सुंदरी का सौंदर्य देखने जाता था या कुत्तों के साथ उसके वार्तालाप का आनंद लेने. उसकी बातें ड्रामा-जैसी थीं, पर नहीं अगर ड्रामेबाज़ी होती तो मार खाने के बाद वह यहां दिखाई न देती. कुछ और ही बात थी!

पर एक दिन तो गज़ब ही हो गया. कुत्तों को एक डेढ़ फर्लांग दूर ही उसके आने की आहट का पता चल जाता था और कूं-कां करने लगते थे. उनकी आवाज़ को मैं भी पहचानने लगा था. मैं खिड़की पर आया. वह आयी. तमाम कुत्ते, दस बारह की संख्या में पुनः आ गये. वह 'माल' निकाल-निकाल कर खिलाने लगी- अरे! काला कुत्ता नहीं दिखा. उसने बुलाया, 'कालू-कालू.' वह इधर उधर देख कर 'कालू-कालू' बुला रही थी. पर कालू का पता नहीं था. लेकिन कुछ ही देर में वह दिखाई दिया. मुझे दिखाई दिया क्योंकि मैं दूसरी मंज़िल पर ऊंचाई पर था. पर मैं क्यों बोलूं?

काला कुत्ता नज़दीक आया और विचित्र-सी आवाज़ में वह गुर्राया. सभी कुत्ते सहम गये. जिसके मुंह में बोटी थी. वह छिटक कर नीचे गिर गयी, जिसके सामने बोटी पड़ी थी, वह बोटी छोड़ कर भयभीत सा हो कर पीछे हट गया. अचानक कुत्तों का व्यवहार बदल गया. सड़क के दूसरे फुटपाथ पर वह काला कुत्ता खड़ा पास आने से कतरा रहा था. पर शायद पास आने का मोह भी था. हिचकता हुआ सड़क क्रॉस कर हीरोइन के पास आया. अधिक पास भी नहीं, दूर ही रहा. ठिठका रहा.

हीरोइन मुर्ग़े की टांग और बोटी दोनों हाथ में लेकर उसके पास जाने को हुई, खिलाने को. लेकिन जितना वह आगे बढ़ती उतना वह पीछे खिसक रहा था. अजीब दृश्य था. मैं भी आश्चर्य में था. आज इस कुत्ते को क्या हो गया? बाक़ी कुत्ते आज क्यों नहीं हड्डियां चचोड़ रहे हैं?

हीरोइन कुछ नाराज़ हुई. आवाज़ तो उसकी बुलंद हमेशा से थी, आज भी है... बुला रही है. उस काले कुत्ते को लेकिन वह पीछे हटा चला जा रहा है. वह

दौड़ी उस कालू के पास. वह पीछे भागा. अचानक भागमभाग में न जाने कहां से उस ख़ाली सड़क पर सनसनाता हुआ एक ट्रक दौड़ता आया और हीरोइन को कुचलता हुआ भाग गया. मैं चीख़ पड़ा. अपनी खिड़की पर. सामने घायल हीरोइन दिखाई दे रही थी. मैंने पड़ोसी को जगाया और नीचे दौड़ गया. इस बीच सामने की बिल्डिंग के चौकीदार भी चीख़ सुनकर आ गये. कुछ क्षणों तक हीरोइन का हाथ हिला और फिर सिर लुढ़क गया. हाथ खुला का खुला रहा गया. मुर्गे की टांग अभी भी उसके हाथों में फंसी थी.

उस दिन के बाद काले कुत्ते को गली में किसी ने भी नहीं देखा.

सी-३४, श्री पंचवटी अपार्टमेंट,
जुहू गली, अंधेरी (प.),
मुंबई-४०० ०५८
फोन : ९८६९२५१९४०

कविता

कल भी शायद फ़र्क़ नहीं पड़ना है

केशव शरण

तट के पत्थरों पर
अपना आख़िरी दाना चुगने
और समुंदर की लहरों पर
अपनी आख़िरी उड़ान भरने के बाद
वे सो रहे थे
गहरी नींद में,
अपने पांच सितारा नीड़ में.
एक धमाके से जगे वे
और लपटों की फ़्लैश लाइट में
भगे वे पत्ताझार,
अंधेरे और सन्नाटे की ओर
जिधर समुंदर था
और स्टीमर और जहाज़ थे
जिधर से आये थे आतंकी
और उनके पांच सितारा नीड़ पर
बिजलियां बरसा रहे थे
दनादन.
वे सकते में थे
और डरे
जीवन और नीड़ के मोह से भरे,
वे कोई जहाज़ तलाशने के बजाय
उड़ते रहे
अंधेरे आसमान में
और फिर थक-हारकर
बैठ गये आकर
उन्हीं पेड़ों के ऊपर
जो धमाकों और लपटों के पास थे खड़े,
उनका पांच सितारा नीड़
जलता रहा लपटों में
थर्राता रहा गोलियों और ग्रेनेडों से
अगले दिन भी
और अगली रात भी
और उसके अगले दिन भी
और उसकी अगली रात भी,
भारी तबाही के बाद
लपटें रुकीं
धमाके थमे
तीसरे दिन कहीं.
तीसरे दिन कहीं
कमांडो कार्यवाही समाप्त हुई
और चौथे दिन
कबूतरों की दिनचर्या सामान्य हुई
जब दाने लेकर पहुंचे लोग,
और वे पेड़ों से उतरे
और नीड़ से निकले.
कितना भी भयानक अनुभव रहा हो
कितनी भी ख़ौफ़नाक घटना
आयी-गयी हो गयी उनके लिए
पांचवे दिन,
लेकिन हमारे लिए तो
आज भी
अभी भी घटना है जिसके अहसास में
कल भी शायद
कोई फ़र्क़ नहीं पड़ना है
मुंबई या काशी या दिल्ली में.

एस २/५६४ सिकरौल, वाराणसी-२२१००२.

मराठी कहानी

एक थी हसीना

// उज्ज्वला केळकर //

नूरमंज़िल में रहनेवाली औरतों को हसीना के बारे में सोच कर अचरज होता था. थोड़ी-सी जलन भी. अचरज इसलिए कि अल्लाताला ने उसे इतना कुछ दिया.... छप्पर फाड़ के दिया....इतना सुख, शान, ऐश्वर्य, पर उसे कोई अहसास नहीं. न गर्व न ख़ुशी. वह तो सुख-दुःख से परे किसी और दुनिया में खोयी-खोयी सी रहती है. चिनार का पेड़ बर्फ वृष्टि के बाद जैसा दिखाई देता है, वैसी ही दिखती है वह. ख़ूबसूरत किंतु उदास. पर यह उदासी भी, उस पर अच्छी लगती. कभी लगता, उसका चेहरा बिलकुल सूना है. सूना, संज्ञाहीन, रिक्त.... उस पर कोई भाव नहीं, मानो ख़ूबसूरत गुड़िया है. ख़ूबसूरत गुड़िया पर से नज़र भी कहां हटती है भला? लगता है, यह गुड़िया की तरह अचेतन ना रहे. सदा खिली-खिली रहे.

वैसे पहले हसीना ऐसी न थी. नूरमंज़िल में रहने के लिए आने के बाद पहले कुछ दिनों में पड़ोसियों से पहचान हो गयी. सभी औरतें उसे देखकर चहचहातीं, खिलखिलाकर हंसतीं, ख़ूबसूरत तितली की तरह मंडराती रहतीं. लेकिन आज सभी औरतें उसे देखकर हैरान रहती हैं. कहां गयी, उसकी हंसी, ख़ुशमिज़ाजी, उसकी चहचहाहट, बड़बड़ करना, उसका घूमना, मंडराना?

हसीना की ज़िंदगी में एक तूफ़ान आया, जिसने उसे पूरी तरह से ध्वस्त कर दिया. उस पर जैसे बिजली गिरी. किंतु अल्ला की मेहेरनज़र उस पर इतनी थी, वह ध्वस्त नहीं हुई. बिजली उस पर गिरी ज़रूर, पर वह जली नहीं. सिर्फ़ उस बिजली का तेज ही उसमें समा गया. वह और भी निखरी-निखरी सी लगने लगी.

हसीना के साथ जब वह हादसा हुआ, तो नूरमंज़िल की सारी औरतें उसके साथ दुःखी हो गयी थीं. बेचारी अब कहां जायेगी? क्या करेगी? मायके जायेगी? या यहीं रहेगी? तर्क वितर्कों की सीमा नहीं थी. पर कोई नहीं चाहता था, कि वह नूरमंज़िल छोड़कर जाये. उसके वहां होने से ही नूरमंज़िल में नूर आ गया था.

हसीना के साथ एक ऐसा हादसा हो गया, जिसमें उसका घर ध्वस्त हो गया. पर सरकार ने उसे नया घर दिया. मुआवज़े के तौर पर ढ़ाई लाख रूपए मिल गये. उसने फिर एक बार अपना घर बसाया. वन रूम किचन के फ़्लैट से निकलकर थ्री रूम किचन वाले फ़्लैट में अब वह रहने लगी. क़ीमती फर्नीचर, परदे, गहने, क़ीमती कपड़े, सब कुछ मिल गया. इस हादसे ने उसका मर्द उससे छीन लिया, पर उसे दूसरा मर्द भी मिल गया. पहले से ज़्यादा ख़ूबसूरत, ज़्यादा अमीर. उस पर बेहद लट्टू. हसीना के साथ शादी होने के पहले वह कई लड़कियों के दिलों की धड़कन रहा था. दूसरी शादी में इतना अच्छा घर, अच्छा शौहर.... नसीब ने हसीना को जैसे चार चांद लगा दिये. इसीलिए नूरमंज़िल की औरतें कुछ हद तक हसीना से जलती भी थीं.

तीन-साढ़े तीन साल पहले सलीम हसीना से शादी करके उसे नूरमंज़िल ले आया था. आज की तरह इस इमारत में तब नूर नहीं था. तीन भागों में बंटी, पर एक दूसरे से जुड़ी तीन इमारतों को मिलाकर यह नाम दिया था. वास्तव में, यहां पहले सीधी-साधी बस्ती थी. बाबाजान बस्ती. फिर इसका आधुनिकीकरण हो गया. एक हिस्से में वन रूम किचन, दूसरे हिस्से में टू रूम किचन और तीसरे हिस्से में थ्री रूम किचन फ़्लैट बनाये गये. इस नूतनीकरण के बाद बाबाजान बस्ती का नूरमंज़िल में रूपांतरण हो गया.

सलीम और हसीना वन रूम किचनवाले फ़्लैट में ही रहते थे. पर मुंबई में सर पर छत हो, तो अल्ला की ख़ैरियत ही समझो. हसीना को तो यह रंग दिया हुआ ईंट का पक्का घर देखकर लगा, मानो वह जन्नत में आ गयी. नेज जैसे देहात में झोपड़ी में रहनेवाली हसीना. उसकी झोपड़ी से यह घर कोई ख़ास नहीं था, पर उसमें सारी चीज़ें थीं जो उसकी झोपड़ी में नहीं थीं. सर पर

पंखा था. टी.वी. था. दीवान, टेबुल, कुर्सियां थीं. शुरू-शुरू में वह दीवान या कुर्सी के एक कोने में सिकुड़कर बैठ जाती. ऐसा लगता कि अपने नहीं, शायद पराये घर में हो. बहुत दिनों तक पंखा या टी.वी.चालू करने में भी वह हिचकिचाती. मुंबई नगरी की चमक-दमक देखकर उसकी आंखें चकाचौंध हो गयी थीं. उसके गांव के घर के बाहर तो खेत-खलियान दिखते थे. यहां बाहर आओ तो चारों ओर मंज़िलें ही मंज़िलें....भीड़ ही भीड़ दिखती थी. उसे लगता, गांव में जितनी घास की पत्तियां हैं, उतने यहां लोग हैं. इतने लोग इर्द गिर्द देखकर पहले तो उसका जी बहुत घबराता था. लेकिन धीरे-धीरे वह मुंबई के माहौल में समा गयी. नूरमंज़िल के माहौल में तो वह ऐसी घुलमिल गयी, कि जैसे वह यहीं पैदा हुई हो.

बसंत ऋतु में हवा के हलके - हलके झोंके से जैसे चमेली की बेल लहराये और फूलों से ख़ुशबू की लहरें उठें, उसी तरह हसीना अपने कमरे में नज़ाकत से लहराती रहती. ग़रीबी के कारण मायके में जो वह कर नहीं सकी, ऐसी कितनी ही चीज़ें वह यहां कर सकती थी. नयी चीज़ें सीख रही थी. अब उसे दो वक़्त पेट भर दाल-रोटी मिलती थी. मन चाहे तो बिरियानी या गोश्त पका सकती थी. सलीम के साथ घूमने फिरने का आनंद ले सकती थी. बाहर निकलते वक़्त अच्छे-अच्छे कपड़े पहन सकती थी. इतना सुख-चैन अपने नसीब में होगा, यह तो शादी के पहले उसने कभी सोचा ही नहीं था.

सलीम सीधा-सादा भला, नेक दिल, पाक आदमी था. अपने छोटे से घर में ख़ुशकिस्मती से एक चांदनी रह रही है, इसलिए वह हमेशा अल्ला से दुआ करता था. हसीना ने ख़ूबसूरत आलीशान महल सिर्फ़ सिनेमा में देखे थे, किंतु सलीम ने तो वास्तव में देखे थे, इसलिए हसीना को जन्नत जैसा लगनेवाला वन रूम किचनवाला फ़्लैट सलीम की दृष्टि में एक झोपड़ा ही था. जैसे-जैसे उसे धंधे में बरकत मिलेगी, पैसे और मिलेंगे, तो अच्छा घर लेने का मन में ठान ही लिया था उसने. वह हसीना को ख़ुश रखना चाहता था और हसीना ख़ुश ही थी. हसीना की दृष्टि से उसे ज़िंदगी में सब कुछ मिला था. उसकी दृष्टि से अब पाने के लिए कुछ बचा ही नहीं था. सलीम उसके लिए शौहर तो था

१ अक्तूबर १९४२; एम.ए.,एम.एड.

लेखन : अनेक पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां, कविताएं, वैचारिक आलेख, समीक्षाएं व आलोचनाएं मूलतः मराठी में प्रकाशित.

प्रकाशन : 'फास्ट फूड', 'कृष्णस्पर्श','धुक्यातील वाट', 'झाले मोकळे आकाश' (कहानी-संग्रह) व 'चंद्रपालखीची वाट' (कविता-संग्रह) प्रकाशित. अनेक बालकथाएं व बाल नाट्य प्रकाशित.

अनुवाद : हिंदी के कई उपन्यास, कहानी-संग्रहों और लघुकथा-संग्रहों के अनुवाद प्रकाशित.

पुरस्कार : महाराष्ट्र की अनेक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत. वर्ष १९९६ में सांगली जिला 'आदर्श शिक्षिका' पुरस्कार प्राप्त.

प्रसारण : आकाशवाणी से कथा, कविता, व्याख्यान, परिचर्चा में सहभागीता. 'प्रतिबिंब' पारिवारिक श्रृंखला के एक सौ से अधिक एपिसोड्स का लेखन. नाट्यलेखन.

अन्य : अनेक शिक्षा समितियों की सदस्यता (पाठ्यक्रम, नवसाक्षरता, मूल्यांकन व हस्तपुस्तिका निर्माण.)

संप्रति : बलवंतराव झेले हाईस्कूल, जयसिंगपुर (जि. कोल्हापुर) से प्रधान अध्यापिका के पद से सेवानिवृत्ति.

ही. इसके साथ-साथ वह उसके अब्बू की भूमिका भी निभाता, इतना ही नहीं, हसीना के लिए वह उसे जहन्नुम से निकालकर जन्नत में ले जानेवाला मसीहा था. उसका सर्वस्व था.

हसीना के नसीब में पिता के प्यार का सुख नहीं

था. मेहराजबी की यह तीसरी लड़की. सना-सबीना के पीठ पर साल भर में मेहराज को तीसरी लड़की ही हुई. 'तो तुम्हारी कोख़ सिर्फ़ लड़कियां ही पैदा करती है,' ग़ुस्से में चिल्लाकर अब्दुल्ला उसे छोड़कर कहीं चला गया. क्रोधावेश में उसे समझ नहीं आया कि अपनी तीसरी बेटी टूटे हुए छप्पर के घर में उतरी आसमान की चांदनी है. बेटी का गोरा रंग, गुलाब की पंखुड़ी जैसे होंठ, झील जैसी नीली आंखें, सब कुछ इतना मोहक था, कि अब्दुल्ला की बड़ी बहन ख्वाजाबी ने उसका नाम हसीना रखा. अब्दुल्ला के जाने के बाद उसने इस परिवार को थोड़ी सी मदद की, पर आख़िर, उससे कब तक चल पाता? अनपढ़ मेहेराज बी ने बीड़ियां बांधकर अपना और अपनी बेटियों का गुज़ारा करना शुरू किया.

अब्दुल्ला ने निपाणी में अपना दूसरा घर बसाया. पर उसने मेहराजबी को तलाक़ नहीं दिया था. बीच-बीच में वह घर आया करता था. उसके घर आने पर मेहराजबी की भागदौड़ शुरू होती. उसके लिए वह मुर्गी-मटन पकाती. पेटभर खाना खाकर वह आराम करता और जाते वक़्त कभी मीठी बातें करके, कभी झगड़ा करके मेहराजबी के पास से बचे हुए पैसे लेकर चला जाता. कभी शराब पीकर उसे गालियां देता, मारता. हसीना को लगता, अम्मी को उसे घर के अंदर आने ही नहीं देना चाहिए. आये तो उसे घर से निकाल भगाना चाहिए. घर की कौन सी ज़िम्मेदारी वह उठाता है, जिसके लिए उसे राजा की तरह सम्मान दिया जाये? उसके सामने ग़ुलाम की तरह झुका जाये? पर उसके ऐसे कहने पर अम्मी बोलती, 'ऐसा मत कहो, वह तुम्हारे अब्बाजान हैं.'

'वो भंकस, शराबी, तुम्हें मारने पीटने वाला, तुम्हें गालियां देने वाला मेरा बाप नहीं है. वो तो हैवान है.' यह रिश्ता हसीना को कभी रास नहीं आया. स्कूल की उसकी सहेलियों के पिताजी कितने अच्छे थे. स्कूल में वह किताबें पढ़ती. किताबों की कहानियों में भी पिता का वर्णन कितना अलग, कितना अच्छा होता था. अब्दुल्ला तो ऐसा नहीं था. फिर भी उसके आने पर उसकी बड़ी बहनें सना-सबा अब्बू-अब्बू करके उसके आगे पीछे दौड़तीं, पर जबसे उसे समझ आयी, हसीना ने कभी भी उसे अब्बू कहकर नहीं पुकारा. वह जब घर आता, हसीना जितना हो सके घर के बाहर ही रहती.

मेहराजबी को अब्दुल्ला से कोई शिकायत हो, ऐसा नज़र नहीं आता. उसे लगता, आख़िर वह मर्द है. जड़ा दीं उसने दो-चार लातें तो क्या बिगड़ता है? उसके अड़ोस-पड़ोस में यही सब तो होता था. उसके मन में मेहराजबी के लिए प्यार है, तभीच तो वो आता है, ऐसा सोचती मेहराजबी और उसके आने के बाद उसकी आव-भगत करने में, उसे ख़ुश करने में वह जुट जाती. उस वक़्त उसकी बीड़ियां कम बांधी जातीं. पैसे भी कम मिलते. बीड़ियां बांधने से मिले पैसों से अब्दुल्ला को शिकायत नहीं थी, किंतु झोपड़े में भरी तंबाखू की गंध से ज़रूर थी. तंबाखू की गंध से उसका सर चकराने लगता. उसका मिज़ाज बिगड़ जाता. वह शिकायत करता, मेहराजबी का पूरा बदन तंबाखू से भर गया है. बाद में अब्दुल्ला के आने पर मेहराजबी बीड़ियां बांधना बंद करने लगी. वह दो-तीन बार नहाती. घर में धूप जलाती. अब्दुल्ला का भला-बुरा सुनकर भी, उसके मार, घूसे सहकर भी, पूनम की चांदनी में खिले हुए कमल की तरह मेहराजबी प्रफुल्लित होती थी. हसीना को बड़ा ताज़्ज़ुब होता था. मेहराजबी कहती, वह कैसा भी बर्ताव करे, उसे मारे, पीटे, कुछ भी करे, किंतु उसके पास रहे. मगर ऐसा नहीं होता था. उसका जाना भी मेहराजबी को स्वाभाविक ही लगता. उसकी सौतन उससे जवान जो थी और सबसे बड़ी बात यह थी, कि उसने उसे नाम रोशन करने वाला चिराग़ दिया था. उसे बेटा हुआ था. सौतन के उस अनदेखे बच्चे के लिए भी मेहराजबी के दिल में प्यार उमड़ आता. हर बार वह बच्चे के लिए कपड़े, खिलौने, मिठाई भेजती रहती. अब्दुल्ला के आने पर ख़र्चा ख़ूब बढ़ जाता. उसके जाने के बाद घर ख़र्चे में कटौती शुरू होती. कभी चावल नहीं, कभी रोटी. इस तरह कई दिन महिने गुज़र जाते. फिर कभी तूफ़ान की तरह वह घर आ जाता. घर में जो भी छोटी-मोटी चीज़ें होतीं, वह ले जाता. पर मेहराजबी का श्रम से थका चेहरा चमक उठता. बारिश के बाद चमेली की बेल जैसे खिलती है, वैसे ही वह खिल उठती, जैसे उसके थोड़े से सहचर्य से उसे आगे की तकलीफ़ें उठाने के लिए संजीवनी मिल जाती. पर बेटियों के मन में उसके लिए ज़रा भी ममता, प्रेम या आदर नहीं था. हां, अब सना-सबा भी बड़ी हो गयी थीं. उचित अनुचित जानने लगी थीं. हसीना के मन में तो पहले से ही उसके बारे में तिरस्कार, घृणा थी.

सना, सबीना, हसीना, तीनों ख़ूबसूरत थीं. जंगली फूलों की तरह हवा खाकर बढ़ रही थीं. खिली-खिली, चमकीली दिखती थीं. सना-सबीना को कोल्हापुर से रिश्ते आये. उनकी शादी हो गयी. हसीना थी सबसे ख़ूबसूरत, इसलिए वह पहले से ही ख्वाजा फूफी की लाड़ली थी. फूफी उसके लिए अपनी ननद के नेक, गुणवान बेटे सलीम का रिश्ता लायी. हसीना सिर्फ़ सोलह साल की थी, पर इतना अच्छा रिश्ता देखकर मेहराजबी ने दसवीं कक्षा में पढ़नेवाली अपनी बेटी को स्कूल से निकाल दिया और उसकी शादी कर दी.

हसीना को मुंबई आये दो-अढ़ाई साल हो गये. अब वह पूरी तरह से मुंबई की होकर रह गयी. एक ईद को सलीम शौकत को खाना खाने घर लेकर आ गया. उसने हसीना को बताया, शौकत उसका दिलोजान से प्यारा दोस्त है. दोनों स्कूल में एक ही क्लास में पढ़ते थे. क्राफर्ड मार्केट में शौकत की ड्राईफ्रूट की दुकान थी. दोनों मुंबई में रहते थे, पर एक दूसरे को मालूम नहीं था. अचानक एक दिन रास्ते में मिले, तो सलीम ने उसे ईद के दिन घर पर खाने को बुला लिया. शौकत गोरा, चिकना, लंबा, आकर्षक, ख़ुशमिज़ाज आदमी था. रुबाब तो ऐसा था, मानो कोई राजकुमार है. इतनी नज़ाकत से और अदब से बातें करता था, मन में आता, और कुछ न करो, बस्स, उसे सुनते ही रहो. शायरी भी अच्छी ख़ासी करता था. ड्राईफ्रूट, मिठाई, कितना कुछ लेकर आया था. उसने हसीना को देखा, तो देखते ही रह गया. सलीम स्वभाव से अच्छा था, किंतु कुछ रूखा-सूखा आदमी था. ऐसे आदमी की इतनी ख़ूबसूरत बीवी... मानो, बंजर ज़मीन में गुलबकावली का फूल खिला है. उसे उसकी क़िस्मत पर जलन होने लगी.

शौकत सलीम के यहां बार-बार आने लगा. हर वक़्त साथ में कुछ न कुछ लाता रहता. कभी फल, कभी गुलाब का गुलदस्ता, कभी महंगा इत्र, सेंट की बोतलें, कभी मिठाई..... यह सब वह रखता तो सलीम के हाथ में, मगर हसीना की ओर ऐसी नज़रों से देखता, जैसे वह कहना चाहता कि ऐ मलिका, सच बात यह है, कि यह नज़रानें, तोहफ़े तुम्हारे लिए हैं.

अब तीनों के मिलकर प्रोग्रॉम बनने लगे. कभी पिक्चर, कभी समुंदर के किनारे घूमना, कभी बाग़, कभी छोटी-मोटी सैर, घूमना-फिरना. कभी शौकत खाने पर सलीम के घर में रुकता, तो कभी उन्हें आलीशान होटल में दावत देता. शौकत की दिलचस्प मीठी, नज़ाकत भरी

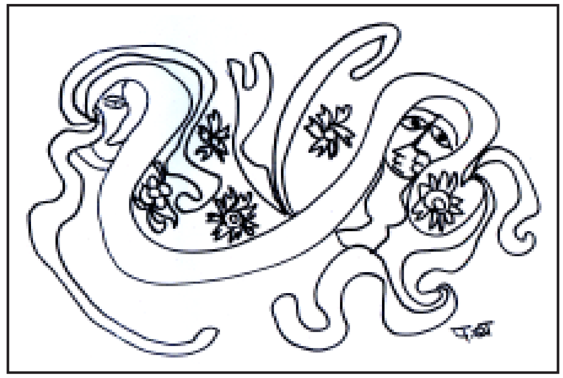

बातें, रोब, बेझिझक बर्ताव, इन सब में हसीना कब कैसे डूब गयी, उसकी समझ में भी नहीं आया.

कभी-कभी सलीम के न होते हुए भी शौकत आ जाता. एक बार हसीना ने ज़रदोरी कशीदाकारी किया हुआ लाल लहंगा और लाल कुर्ता पहना था. शौकत कह उठा, 'आज सलीम भाई के घर गुलमोहर खिला है.' कभी उसकी ओर देखकर गाता, 'चौदहवीं का चांद, तुम लाजवाब हो.' कभी सीटी बजाता, 'तेरे हुस्न की क्या तारीफ़ करूं......' बातों-बातों में कभी बेहतरीन शायरी पेश करता. सलीम को भी हसीना की ख़ूबसूरती का एहसास ज़रूर था, मगर आमने-सामने कभी उसने हसीना की तारीफ़ नहीं की थी. शौकत की बातों से हसीना का अपने हसीन होने के बारे में आत्मभान जागृत हुआ.

एक बार शौकत घर आया. हसीना घर में अकेली ही थी. शौकत ने कहा, 'तुम परी हो. तुम्हें रहने के लिए ऐसा झोपड़ा नहीं राजमहल चाहिए.' अब हसीना को जन्नत जैसा लगनेवाला अपना घर झोपड़े जैसा लगने लगा. शौकत की बातों से वह जान गयी. जितना वह देखती थी, अनुभव करती थी, उससे कहीं ज़्यादा ऐशोआराम की चीज़ें इस दुनिया में अल्लाताला ने बनायी हैं. शौकत द्वारा वर्णित सभी चीज़ों का, वैभव का एक सुप्त आकर्षण उसके मन में पैदा हुआ.

हसीना की मां बीड़ियां बांधते-बांधते अपनी बेटियों को राजा - रानी की, परियों की, जादूगर की कहानियां सुनाती थी. जिस तरीक़े से वह सुनाती थी, बड़ा विलक्षण था. इससे बेटियों का रोना बंद हो जाता. उसका काम जल्दी-जल्दी निपटता और कहानी सुनते-सुनते बेटियां अपनी मांगें भूल जातीं. आज कल हसीना को फिर से

वे कहानियां याद आने लगी थीं. शौकत के परिचय के बाद उसे लगा, यही है, अपने सपनों का राजकुमार. सारी दुनिया छोड़कर उसके साथ जाये. उसकी नज़रों में भी प्यार-मुहब्बत है, यह बात हसीना कभी से जान गयी थी. फिर भी.... वह जानती थी, यह एक ख़्वाब हैं. ख़्वाब थोड़े ही वास्तविकता में उतरते हैं? अपना सिर झटकाकर वह इस विचार को झटक देने की कोशिश करती.

रात को सोते समय, जब कभी वह सलीम की छाती पर माथा टिकाकर पड़ी रहती, तो उसके दिल में आता, वह सलीम के साथ बेवफ़ाई तो नहीं कर रही. अगली बार शौकत आया, तो उसके साथ बात नहीं करूंगी. सोचूंगी भी नहीं उसके बारे में. सलीम ही मेरा मसीहा है. उसने ही मुझे सुख दिया है. आरामदायी ज़िंदगी दी है. उसका दुःख, दर्द, अभावपूर्ण जीवन मिटा दिया है. सलीम को दुःख हो, ऐसा कुछ भी नहीं करूंगी. पर जब शौकत सामने आता, तब उसके सारे निश्चय रेत के टीले की तरह ज़मीनदोज़ हो जाते. वह भूल जाती, कि इस बारे में उसने कुछ और सोचा था.

एक बार शौकत ने हसीना से पूछा, 'सच सच बताओ, तुम मुझे पसंद करती हो ना?' हसीना ने कोई जवाब नहीं दिया, मगर उसकी नज़रों ने तो सब कुछ बता दिया. फिर उसने कहा, 'तुम तलाक़ लो. हम शादी करेंगे.' पर सलीम कैसे तलाक़ देगा? वह तो हसीना को बेहद चाहता था. शौकत ने कहा, 'तू बता देना, सलीम तुम्हें परेशान करता है, तुम्हारे साथ बदसलूकी करता है. पर उसने कहा, 'सलीम जैसे मसीहा पर इतना झूठा इल्ज़ाम लगाना, उसके लिए नामुमकिन है.' फिर शौकत ने प्रस्ताव रखा, 'हम दुबई भाग जायेंगे और वहां शादी करेंगे. मेरा चचेरा भाई दुबई रहता है. मैं वहां जाने की पूरी तैयारी करता हूं.' किंतु हसीना ने मना किया.

'या अल्ला, कैसी उलझन मेरे नसीब आयी?' वह मन ही मन कहती. वह शौकत से प्यार तो करने लगी थी, किंतु वह सलीम का दिल दुखाना भी नहीं चाहती थी. वह जानती थी, अगर उसके साथ बेवफ़ाई की, तो अल्ला उसे कभी माफ़ नहीं करेगा. फिर भी शौकत की बातें, उसकी नज़र हसीना को बार-बार उसकी ओर खींच लेती. हसीना इतनी उलझन में रहती, मानो वह मंझधार में बह रही है. वह तय नहीं कर पाती कि इस पार जाऊं, या उस पार. मगर एक दिन ऐसा आया, उसे पार तो ले गया, किंतु पूरी तरह से ध्वस्त करके.

अयोध्या में बाबरी मस्ज़िद गिरने के बाद कई जगह जातीय दंगे हो गये. भला-बुरा न देखते हुए, जो भी सामने आता, मारा जाने लगा. सलीम की किसी के साथ दुश्मनी नहीं थी, फिर भी मेन रोड पर उसकी जो दुकान थी, जितनी हो सके, भीड़ ने लूट ली. घबराया हुआ सलीम मुहल्ले में आने लगा. गली के अंदर वह आ ही गया, कि किसी ने उसके पेट में छुरा भोंक दिया. 'हाय अल्ला' की चीख़ मुहल्ले में गूंज गयी. ख़ून से लथपथ सलीम नीचे गिर गया. बाहर का शोर सुनते ही मुहल्ले के लोग गली में बालकनी में जमा हो गये.

बाहर दंगा चल रहा था. शौकत ही सलीम को लेकर घर आया. मोहल्ले के पास का अस्पताल बंद था. आगे के रस्मोरिवाज शौकत ने ही पूरे किये. रिश्तेदारों को, पहचानवालों को बुलाया. हसीना पर मानो आसमान टूट पड़ा. उसने जो देखा, उस पर उसका विश्वास ही नहीं हो रहा था.

हसीना की मां, बहनें, फूफी, रिश्तेदार आ गये. कुछ दिन रहे. रस्म-रिवाज ख़त्म होने के बाद अपने अपने घर चले गये. अड़ोस-पड़ोस के लोगों ने धीरज, सांत्वना दी. हसीना का ख़्याल रखने का वादा किया. कुछ दिन ऐसे ही बीत गये. दुर्घटनाग्रस्त लोगों को सरकार ने अनुकंपा के तौर पर दो लाख रुपये की राशि प्रदान की. शौकत ने ही भागदौड़ की. किसी से सिफ़ारिश करवाई और हसीना को दो लाख रुपये मिल गये.

पांच छः महिने गुज़र गये. हसीना का दुःख सचमुच भारी था. इतनी जवान हसीन औरत... उसकी आगे की ज़िंदगी कैसे कटेगी? फूफी दोबारा आगे बढ़ीं. शौकत से बात चलायी और हसीना की शादी शौकत से करवायी. लोग कहने लगे, 'अच्छा हुआ. बेसहारा हसीना को सहारा मिल गया. हसीना अब 'नूरमंज़िल' के थ्री रूम किचनवाले फ़्लैट में रहने लगी. अब यहां महंगा फर्नीचर है. बढ़िया परदे हैं. रंगीन टी.वी., वी.सी.आर. है. उसका मर्द शौकत कितनों के दिलों की धड़कन था, पर हसीना का नसीब इतना बलिहारी, कि उसे वह मिल गया. हसीना की यह दूसरी शादी थी, पर उसकी क़िस्मत इतनी अच्छी, कि पहले से बेहतर शौहर मिल

गया, मानो उसे चार चांद लग गये. फिर भी वह ख़ुश नहीं थी. वसंत ऋतु के झोंके से लहरानेवाली, झूमनेवाली यह बेल, बर्फ वृष्टि से ठिठुरती दिखाई देने लगी. ऐसा क्यूं भला? मोहल्लेवाले आश्चर्य से एक दूसरे से पूछने लगते. तौबा... तौबा...' लोग कहते.

हसीना का फुदकना, सबसे हंसी मज़ाक़ करना अब बंद हो गया है. चाबी की गुड़िया जैसी वह हिलती है. उसके सपनों का राजकुमार अब उसके पास है. पर वह जब उसके पास आने लगता है, तो हसीना को उसके हाथ में छुरा दिखता है. राजकुमार के पास तलवार होनी ही चाहिए. मगर वह चलनी चाहिए किसी राक्षस पर... दुष्ट पर, दूसरों का छल करनेवाले जादूगर पर. उसके राजकुमार ने छुरा चलाया, उसके मसीहा पर.

हां, उस दिन बालकनी से हसीना ने उसे सलीम के पेट में छुरा भोंकते हुए देखा था. भीड़ इतनी थी, किसी ने क्या किया, किसी को पता ही नहीं चला. मात्र हसीना ने यह घटना अपनी आंखों से देखी. अपनी आंखों से उसने अपने राजकुमार को शैतान बनते देखा. उसे ताज़्ज़ुब हुआ. दुःख तो था ही. अपना प्यार पाने के लिए एक अच्छा आदमी इतना दुष्ट बन सकता है? उसने किसी से इसका ज़िक्र नहीं किया. उसे लगा, अपनी आंखों ने ही गुनाह किया है. एक राजकुमार को शैतान बनते देखा है. उसे अपनी ख़ूबसूरती, अपनी हसीन जवानी से नफ़रत होने लगी. आगे जो हुआ, सबकी नज़रों के सामने हुआ. शौकत के साथ शादी करने में फूफी ने अगुवाई की. फूफी और बाक़ी सब लोगों की दृष्टि से वह अब जन्नत में है. उसके सपनों का राजकुमार उसके साथ है, पर अब तक उनका मिलन नहीं हो पाया. वह पास आने लगता, तो उसे उसके हाथ में छुरा दिखाई देता. वह डर जाती. चीख़ती और फिर घबराकर गुमसुम हो जाती. शौकत बुझी नज़रों से उसकी ओर ताकता रहता.

१७६/२,'गायत्री', प्लॉट नं. १२,
व.सा.का.भवन के पास, सांगली- ४१६४१,
फ़ोन- (०२३३) २३१००२०

अनुवादिका : ***मानसी काणे,***
'मानस', ५ नीलकंठ नगर, हरीपुर रोड,
हरीपुर, सांगली-४१६४१६

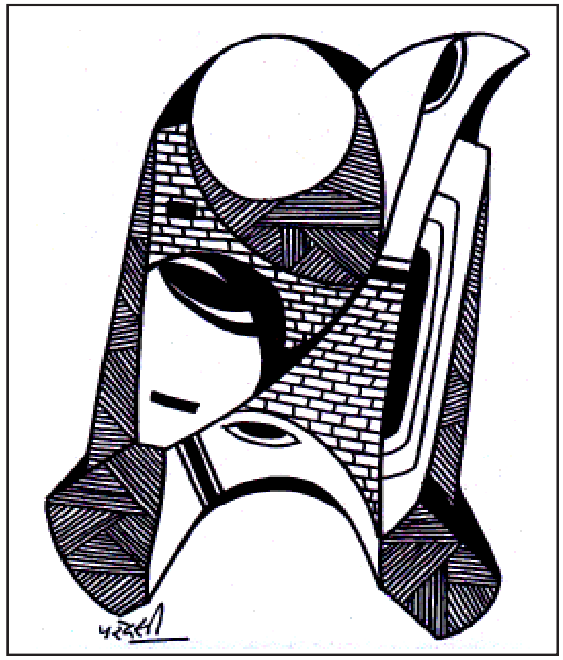

ग़ज़ल

कृष्ण सुकुमार

इक अजानी प्यास के बंधन के पीछे,
आग मन से खेलती है तन के पीछे.

कुछ नहीं मिलता ख़लाओं के सिवा,
जान देते हैं जो अपनेपन के पीछे.

मैं मुसल्सल सोचता रहता हूं, आख़िर,
मौत क्या है मुख़्तसर जीवन के पीछे.

नींद फिर पलकों पे दस्तक दे रही है,
ख़्वाब फिर हैं मुंतज़िर चिलमन के पीछे.

गो कि छूटी चीज़ फिर मिलती कहां है,
दौड़ता रहता है मन बचपन के पीछे.

१९३/७, सोलानी कुंज,
भा.प्रौ.सं.रुड़की, रुड़की-२४७६६७

आमने-सामने

'हम तो भाई ये हैं...!'

हस्तीमल 'हस्ती'

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ.बटरोही, राजेश जैन, डॉ.अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रज़ाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी , राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश',डॉ. शिवओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार और सुभाष नीरव से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है हस्तीमल 'हस्ती' की आत्मरचना.

हर इंसान के भीतर एक दुनिया होती है और एक दुनिया उसके बाहर. भीतर की दुनिया थोड़ी जन्म से ही गढ़ी हुई होती है थोड़ी बाहरी दुनिया से गढ़ती है. जो कुछ बातें जन्म से ही गढ़ी हुई होती हैं उन्हें संस्कार या स्वभाव कह सकते हैं. अपवाद को छोड़ दें तो ये बातें लगभग मृत्युपर्यंत नहीं बदलतीं.

इस भीतर-बाहर की दुनिया में जब द्वंद्व होता है तब जो प्रतिक्रिया जन्म लेती है वह कभी-कभी साहित्य में भी परिवर्तित हो जाती है सिर्फ उसे व्यक्त करने का कौशल चाहिए. ये कौशल थोड़ा जन्मजात भी होता है थोड़ा अनुभव से भी प्राप्त किया जाता है. वरना भीतर की दुनिया तो हर इंसान के पास होती है. यह व्यक्त करने का कौशल ही आदमी को सर्जक की पहचान दिलवाता है. जीवन अपने आप में एक कहानी सा होता है. मेरी अब तक की कहानी कुछ इस प्रकार है.

मेरा जन्म राजस्थान के राजसमंद जिले के एक छोटे से कस्बे आमेट में हुआ. मैं व्यावसायिक परिवार से हूं. धार्मिक स्वरूप में जैन कहलाता हूं. व्यापार में जो चतुराई या येन-केन प्रकार का जोड़-तोड़ ज़रूरी होता है वह मेरे पिताजी में लगभग नहीं था. वे भी कुछ-कुछ साहित्यिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे. जैन पत्रिकाओं में उनके छोटे-मोटे लेख छपते थे. मेरी साहित्यिक प्रवृत्ति आनुवांशिकता स्वरूप ही मुझमें आयी. उन दिनों मेरे घर डाक से दैनिक अख़बार आता था. कभी-कभी पिताजी साप्ताहिक हिंदुस्तान जैसी पत्रिका भी मंगवा लेते थे. दैनिक अख़बार में रविवार के दिन आने वाली कार्टून स्टि-प (मैन्ड-`क वाली) मुझे बहुत भाती थी. मैं रविवार के अख़बार का बेसब्री से इंतजार करता था. ये उम्र होगी लगभग १०-१२ वर्ष की. यहां यह भी बता देना चाहता हूं तब स्वाभाविक रूप से होठों पर कुछ गुनगुनाहट फूट पड़ती थी. जिसमें कभी शब्द होते और कभी नहीं. शब्द होते भी तो बेतरतीब, बेमतलब के.

दसवें क्लास की बात है. मैं स्कूल से घर जा रहा था सहपाठियों के साथ. रास्ते में देखता हूं एक ग़रीब तांगेवाले का घोड़ा आकस्मिक बीमारी से मर गया. कर्ज़ से लाया घोड़ा वह भी अचानक चल बसा. तांगेवाला घोड़े से लिपटकर दहाड़े मारकर रो रहा था. उसके आंसुओं से मृत घोड़े की गर्दन भीगी जा रही थी. यह देखकर मेरे पांव वहीं चिपक गये. सहपाठियों ने चलने को कहा, थोड़ी देर बाद मैं चल तो पड़ा पर जैसे कई दिनों तक वहीं खड़ा रहा. एक दिन क़लम उठाकर उसे कहानी का स्वरूप दे दिया. शीर्षक भी दे दिया 'तांगेवाला'. सहपाठियों ने इसे स्कूल की प्रतियोगिता में भेज दिया. कहानी पुरस्कृत तो हुई लेकिन

हस्तीमल 'हस्ती'

११ मार्च १९४६, आमेट जिला, रामसंमद (राजस्थान)

प्रकाशित कृतियां : 'क्या कहें, किससे कहें' (ग़ज़ल संग्रह) (महाराष्ट्-हिंदी साहित्य अकादमी से पुरस्कृत), 'कुछ और तरह से भी' (ग़ज़ल संग्रह) ('अंबिका प्रसाद दिव्य' पुरस्कार से सम्मानित), ग़ज़ल संबंधी शोध ग्रंथों में उल्लेख, कई ग़ज़ल संकलनों में भागीदारी.कई काव्य संग्रहों में रचनाएं संकलित.

संपादन : काव्य पत्रिका, 'काव्या' (त्रैमासिक) का पिछले पंद्रह वर्षों से संपादन एवं प्रकाशन.

ग़ज़ल गायन : सुप्रसिद्ध ग़ज़ल गायक श्री जगजीत सिंह एवं पंकज उधास द्वारा ग़ज़ल गायन.
दूरदर्शन, आकाशवाणी एवं पत्र पत्रिकाओं में रचनाओं का निरंतर प्रसारण एवं प्रकाशन.

संप्रति : सृजन रत.

गुरूजनों ने इसे मेरी लिखी कहानी नहीं माना.

फिर जीवन-चक्र का चक्कर मुझे मुंबई ले आया. यहां मेरे मामा के परिवार का बहुत सहारा रहा. मुंबई के घाटकोपर उपनगर में कुछ समय रहा. इसके बाद सांताक्रुज उपनगर में दुकान की और आज ३५-३७ वर्षों से यहीं हूं. सांताक्रुज आने के बाद प्रारंभ में साहित्यिक गतिविधि न के बराबर रही पर पत्र-पत्रिकाओं का पठन-पाठन ज़रूर चलता रहा. धीरे-धीरे सुप्त साहित्य का अंकुर करवट लेने लगा और मैं मुक्तक जैसी तुकबंदियां लिखने लगा. मुंबई भी उस दौरान साहित्य का गढ़ था. धर्मयुग, सारिका, माधुरी जैसी राष्ट-ीय पत्रिकाएं नवभारत टाइम्स, जनसत्ता जैसे बड़े अख़बार तब निकलते थे. पत्रिकाएं और अख़बार तो बंद हो गये नवभारत टाइम्स तो अब भी प्रकाशित हो रहा है. कालांतर में कुछ नये अख़बार भी अस्तित्व में आये. साहित्यकारों से परिचय मेरा नाम मात्र का था. हां, जैन समाज के एक कवि श्री चंदनमल चांद से ज़रूर मेरा संपर्क रहा. जब मैं छोटी-मोटी तुकबंदियां कर रहा था उन्हीं दिनों की बात है मुझे फुटपाथ पर पुरानी किताबों में गुजराती के बहुत बड़े शायर बरकत बिराणी 'बेफाम' का ग़ज़ल संग्रह 'घटा' हाथ में आया. उसे पढ़ा और चमत्कृत हो गया. दिमाग में पैठ गया कि लिखना तो ग़ज़ल लिखना है. उसके बाद तुरतफुरत पांच-पचास ग़ज़लें लिख डालीं. तब तक मैं काव्य गोष्ठियों में जाने लगा था. जैन समाज की 'अणुव्रत' आदि पत्रिकाओं में मेरी कविताएं छप चुकी थीं. कुछ ऐसा ही दिल्ली की 'मुक्ता' आदि अन्य पत्रिकाओं में भी छप रहा था.

अमृतसर के मदन पाल मुंबई में फ़िल्मी गीतकार बनने आये थे. इसी क्रम में हास्य-व्यंग्य के कवि आसकरण अटल, वीनू महेंद्र, कैलाश सेंगर आदि कवियों का भी मेरी दुकान पर आना-जाना शुरू हो गया. तब मेरी दुकान का स्वरूप दुकान-कम-कॉफी हाउस जैसा हो गया था. बाद में उर्दू के बहुत बड़े शायर स्व. सुदर्शन फ़ाकिर का आना-जाना और उनकी बैठक तो मृत्युपर्यंत रही. हां, तब तक जो ग़ज़ल के नाम पर मैंने लिखा वह मदन पाल जी को बताया. उन्होंने सीधे-सीधे कहा - 'हस्ती जी बुरा न मानें तो आपके हित की एक बात कहना चाहूंगा. मैंने कहा-'कहिए'. उन्होंने मुझे समझाते हुए कहा - 'इनमें विचार तो अच्छे हैं पर ये ग़ज़लें नहीं हैं. ग़ज़लों का अपना एक व्याकरण होता है जो इनमें ग़ायब है. सुनकर मैं ठंडा पड़ गया. फिर न जाने मुझे क्या सूझा, उनसे इसका व्याकरण समझाने को कहा और मशक़्क़त शुरू कर दी. धीरे-धीरे कुछ समझ में आने लगा.

इन सबके बीच मेरा मानसिक द्वंद्व शुरू हो गया था. मेरी बिरादरी वाले कहते थे कि ये कुछ काम-धाम करता नहीं है ऐसे ही फालतू इधर उधर कवियों में घूमता रहता है. ये क्या खाक कमायेगा? उधर साहित्यिक समाज में नया-नया और फिर बनिया होने की वजह से उपेक्षा झेलनी पड़ती थी. ये ताना भी सुनना पड़ा कि ये बनिया क्या कविता लिखेगा. यह सही भी था, बहुत कुछ आता भी न था.

ये द्वंद्व इतना भारी हो गया कि एक दिन एकांत में फूट-फूट कर रो पड़ा और सीधे-सीधे ईश्वर से शिकायत की. 'ये क्या चल रहा है मेरे साथ, न इधर का हूं न उधर का. मैंने तुझसे कविता मांगी नहीं थी. फिर बेइज़्ज़ती क्यों करवा रहा है? अगर कविता दी है तो थोड़ा सलीका भी दे, नहीं तो वापस ले ले'. दर्द गहराई से उभरा था. लगता है वह ईश्वर तक पहुंच गया. गाड़ी धीरे-धीरे पटरी पर आने लगी. शनैः शनैः लोगों का स्नेह पाने लगा. ये मेरी भावुकता और बेवकूफी भी हो सकती है.

मैं दुनिया की नज़रों में व्यवसायी भले था लेकिन स्वभाव मेरा कविता वाला था संवेदना और परपीड़ा को समझाने वाला.

एक वाकया बताना चाहूंगा.

सांताक्रुज़ में प्रारंभ में चाल सिस्टम के एक छोटे से कमरे में रहता था. बच्चे बड़े हुए तो कुछ बड़े घर की ज़रूरत महसूस हुई. जोड़-तोड़कर ले भी लिया. शिफ्टिंग के बाद एक दिन उस छोटे-से घर में कार्यवश जाना हुआ तो देखता हूं जैसे एक घोंसला जिसे आंधियों ने बरबाद कर दिया हो. सब तरफ कागज़ बिखरे हुए, हर तरफ मिट्टी जमी हुई. मटकी एक तरफ लुढ़की हुई. एकदम वीरान. अचानक मुझे ऐसा लगा जैसे वह घर मुझसे कह रहा है - 'बस थोड़ा-सा पैसा आया तो छोड़कर चले गये.' और न जाने मुझे क्या हुआ मैं कमरे के बीचो-बीच बैठकर ज़ार-ज़ार रोने लगा. अचानक मेरे पिताजी आ गये. देख के वे स्तब्ध रह गये. 'यह यहां एकांत में फूट-फूट कर क्यों रो रहा है?' बड़ी मुश्किल से अपने को थामा और रोने का कारण बताया. पिताजी ने प्यार से सर पे हाथ फेरा और बोले - 'वाह हस्ती! अपने मां-बाप को छोड़कर आया तो नहीं रोया और इस ईंट-पत्थर के मकान के लिए रो रहा है!' मैं क्या जवाब देता? लेकिन मन ही मन तय कर लिया, इसे कभी बेचूंगा नहीं और अपना पता भी यही रखूंगा. घर बदलते गये लेकिन पत्र-व्यवहार का पता आज भी वही है.

उस वक़्त मेरी स्थिति दो घोड़ों पर सवार जैसी थी. एक व्यवसाय, एक कविता. व्यवसाय में कविता वाला स्वभाव बाधक बनकर खड़ा था. व्यवसाय थोड़ा रुक-रुक कर चल रहा था. थोड़ी बहुत तानाकशी तब भी समाज में चल रही थी.

लेकिन मैं दोनों घोड़ों को धीरे-धीरे साध रहा था. यहां अपने पिताजी को धन्यवाद देना चाहूंगा. उन्होंने कभी यह नहीं पूछा बेटे क्या कमा रहे हो? उन्हें मेरे साहित्य की दुनिया में होने का भी सदा गर्व ही रहा. इसी कारण मैं कविता में थोड़ी बहुत सफलता हासिल कर सका.

धीरे-धीरे दो ग़ज़ल संग्रह 'क्या कहें, किससे कहें' (महाराष्ट्र-हिंदी साहित्य अकादमी से पुरस्कृत) तथा 'कुछ और तरह से भी' (अंबिका प्रसाद दिव्य पुरस्कार से सम्मानित) प्रकाशित हुए. ग़ज़ल संबंधी संकलनों एवं शोध-ग्रंथों में भी उल्लेख होने लगा. प्रख्यात गायक जगजीत सिंह, पंकज उधास, मनहर उधास जैसे गायकों ने भी ग़ज़लें गायीं. इनमें जगजीत सिंह द्वारा गायी ग़ज़ल 'प्यार का पहला ख़त....' बहुत प्रसिद्ध हुई. मंचों पर भी अलग सम्मान मिलने लगा. गोष्ठियों में स्नेहपूर्वक बुलाया जाने लगा. दूरदर्शन और रेडियो पर निरंतर रचना पाठ हो रहा है. देश की शीर्षस्थ पत्र-पत्रिकाओं ने भी मेरी रचनाएं प्रकाशित कीं. १३-१४ वर्ष पहले विचार आया कि कविता ने इतना सम्मान दिया है तो कुछ कर्ज भी अदा करना चाहिए. एक कविता की पत्रिका 'काव्या' प्रारंभ की. डॉ. हूबनाथ को सहयोगी बना लिया, जिनका श्रम-सूझ-बूझ अब तक 'काव्या' को समृद्धि दिलाने में योगदान कर रहा है. २४-२५ अंक शुरू में अपनी जेब से निकाले. फिर अचानक दुकान में चोरी होने से जीवन की गाड़ी वहीं थम गयी. कुछ अंतराल के बाद पत्रिका पुनः शुरू की. शायर लक्ष्मण दुबे को जोड़ा. बाद में कवयित्री कविता गुप्ता भी जुड़ीं. इनका आर्थिक एवं रचनात्मक सहयोग अब तक बना हुआ है और 'काव्या' निरंतर काव्य रसिकों का स्नेह पा रही है.

बच्चों ने व्यावसायिक ज़िम्मेदारी कुछ वर्षों पूर्व ही संभाल ली है. मेरी साहित्यिक गतिविधियों को मूक समर्थन दे रहे हैं. साहित्य में स्नेह पाने लगा तो समाज वाले भी स्नेह देने लगे. पिताजी का कुछ माह पूर्व ही देहांत हो गया. पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवहार में मैं फिसड्डी हूं. यह मोर्चा कुशल गृहणी की तरह पत्नी बराबर संभाल रही है. डायबिटीज २० वर्ष पूर्व ही साथ हो गयी थी. मैं कविता की राह पर चल ही रहा हूं. जिसका कोई छोर तो नहीं है. पर कभी कुछ अच्छा लिखने में आ जाता है तो बड़ा सुकून मिलता है.

जीवन बड़ा अबूझ है. वह अपने को पूरा व्यक्त नहीं करता. निराशा के क्षणों में अंदर से कोई कहता रहता है. सब कुछ अच्छा होगा. ओशो, अमृता प्रीतम मेरे प्रिय लेखक रहे हैं. उचाट मन कभी-कभी यहां भी सुकून पाता है. कबीर मेरे आदर्श रहे. उन्होंने कविता कभी नहीं बेची. रोजी-रोटी के लिए हाथ-पांव चलाये और संसार के दुख गाने के लिए मन-वीणा के तार कसे.

तन बुनता है चदरिया, मन बुनता है पीर।
दास कबीरा सी रही अपनी भी तकदीर॥

कमोबेश मेरा भी यही हाल रहा. एक पुराना दोहा और याद आ रहा है-

मीलों लंबी ज़िंदगी बरसों दौड़े दौड़।
बाकी सब विस्मृत हुआ, याद रहे कुछ मोड़॥

वर्षों लंबी ज़िंदगी में कुछ बातें ही याद रहती हैं. परेशानियां पैदा करनेवाली कुछ ऐसी भी बातें हैं, जो सबके साथ घटित होती हैं. उनका ज़िक्र कोई मतलब नहीं रखता. एक बात ज़रूर यहां बताना चाहूंगा. हम जैन हैं पर मूर्तिपूजक नहीं हैं. इसलिए पूजा-पाठ और कर्मकांड आदि को हमारे घर में प्रश्रय नहीं दिया जाता. अंधविश्वास भी लगभग नहीं रखते. औरतें श्रद्धावश व्रत, उपवास, रात्रिभोजन का त्याग आदि करती रहती हैं . आस्थावश त्योहारों पर पूर्वजों का स्मरण अवश्य करते हैं.

बात बचपन की है. पूर्वजों के पूजन के बाद कुछ मांगने का रिवाज़ है. मुझे भी कुछ मांगने को कहा गया. मैंने मन ही मन

हस्तीमल 'हस्ती' की ग़ज़लें

महले, अटारी, बाग़-बग़ीचा, मेला, हाट घुमा कर देख।
फिर भी बच्चा ना बहले तो, लोरी एक सुना कर देख॥
छू हो जाती हैं धज सारी या कुछ बाक़ी रहता है।
डिगरी, पदवी, ओहदों से तू अपना नाम हटा कर देख॥
चार दिनों में भर जायेगा दिल इन मेलों-खेलों से।
चाह रहेगी सदा नवेली मन को रोग लगा कर देख॥
जंतर-मंतर जादू-टोने झाड़-फूंक, डोरे-ताबीज़।
छोड़ अधूरे-आधे नुस्खे ग़म को गीत बना कर देख॥
शब के बाद सबेरे जैसा बचता ही जाऊंगा मैं।
चाहे जितनी बार मुझे तू ख़ुद से जोड़ घटा कर देख॥
उलझन और गिरह तो 'हस्ती' हर धागे की क़िस्मत है।
आज नहीं तो कल उलझेगी जीवन-डोर बचा कर देख ॥

मुहब्बत का ही एक मोहरा नहीं था।
तेरी शतरंज पे क्या-क्या नहीं था॥
सज़ा मुझको ही मिलनी थी हमेशा।
मेरे चेहरे पे ही चेहरा नहीं था॥
कोई प्यासा नहीं लौटा वहां से।
जहां दिल या भले दरिया नहीं था॥
हमारे ही क़दम छोटे थे वरना।
यहां परबत कोई ऊंचा नहीं था॥
किसे कहता तवज़्ज़ो कौन देता।
मेरा ग़म था कोई क़िस्सा नहीं था॥
रहा फिर देर तक मैं साथ उसके।
भले वो देर तक ठहरा नहीं था॥

हंसती गाती तबीयत रखिए।
बच्चों वाली आदत रखिए॥
शोला, शबनम, शीशे जैसी।
अपनी कोई फ़ितरत रखिए।
हंसी, शरारत, बेपरवाही।
इनमें अपनी रंगत रखिए॥
छेड़-छाड़, आवारागर्दी।
करने को भी फ़ुरसत रखिए॥
भरे-भरे मानी की ख़ातिर।
कभी कभी कोरा ख़त रखिए॥
काम के इंसां हो जाओगे ।
हम जैसों की सोहबत रखिए॥

ग़म नहीं हो तो ज़िंदगी भी क्या।
ये ग़लत है तो फिर सही भी क्या॥
सच कहूं तो हज़ार तकलीफ़ें ।
झूठ बोलूं तो आदमी भी क्या॥
बांट लेती हैं मुश्किलें अपनी।
हो न ऐसा तो दोस्ती भी क्या॥
चंद दानें उड़ान मीलों की।
हम परिंदों की ज़िंदगी भी क्या॥
रंग वो क्या है जो उतर जाये।
जो चली जाये वो ख़ुशी भी क्या॥

◆ ◆ ◆

जीवन में सफलता मांगी. फल जानने के लिए सामने पूजा में रखी अनाज की ढेरी में से कुछ अनाज के दाने उठाने के लिए कहा गया. यहां बताना चाहूंगा. विषम संख्या ३,५,७ श्रेष्ठ फल का प्रतीक मानी जाती. इसे आंचलिक भाषा में 'एका' कहते हैं. मैंने दाने उठाये, गिने तो 'एका' यानी विषम संख्या ही आयी. पर आये हुए पांच दानों में एक दाना मरियल किस्म का था. सबने अच्छा फल बताया. पर मैंने इसका फल अलग निकाला. मेरा फल था सफलता तो मिलेगी पर कहीं कमी सी महसूस होगी, ठीक यही हाल हुआ भी. व्यापार हो, कविता हो, प्रेम हो सब में थोड़ी बहुत कमी ही महसूस होती है. सादगी पसंद व्यक्ति हूं, तड़क-भड़क चिढ़ाती है. थोड़ा सिद्धांत प्रेमी भी हूं. कभी गाड़ी-बंगले की कामना नहीं की. कपड़े ज़रूर अच्छे पसंद करता हूं. अपनी बिरादरी की अपेक्षा साहित्यिक मित्रों में उठना-बैठना अच्छा लगता है. हां, अंत में मैं उन सभी वरिष्ठ साहित्यकारों के प्रति आभार जिनका जाने-अनजाने मार्गदर्शन स्नेह एवं आशीर्वाद मिला ! काव्य रसिकों का भी, जिन्होंने मेरा हौसला बढ़ाया.

रहा फिर देर तक मैं साथ उसके।
भले वो देर तक ठहरा नहीं था॥

और साथ-साथ उन चेहरों का भी जो ज़िंदगी में तो ज़्यादा नहीं ठहरे पर ज़हन में अभी तक ठहरे हुए हैं. मेरी ज़िंदगी को शायरी और शायरी को ज़िंदगी देते जा रहे हैं.

२८ कालिका निवास, नेहरू रोड,
सांताक्रूज (पू.) मुंबई- ४०० ०५३
फ़ोन - ९८२०५९००४०

सागर/सीपी

'यदि जिजीविषा न हो तो विकल्प क्या है!'

✍ प्रो. भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज़'

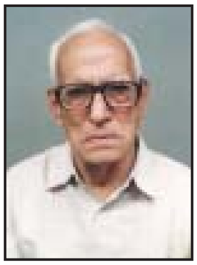

__प्रो.__ भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज़' अंग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर, हिंदी के प्रतिष्ठित कवि एवं उर्दू के सिद्धहस्त शायर- 'थ्री इन वन' हैं. यह कहना कठिन प्रतीत होता है कि उन्हें किस भाषा-साहित्य में महारत हासिल है. उर्दू भाषा की नज़ाकत एवं नफ़ासत से वे परिचित हैं. हिंदी की शुचिता और अंग्रेज़ी की गरिमा भी उनकी भाषा शैली में हैं. वे ऐसे वयोवृद्ध साहित्य साधक हैं जिन पर उम्र आकर ठहर गयी है. वे निरंतर मां शारदा की आराधना में लगे रहते हैं. नौ दशक पार कर चुके इन रचनाकार की निष्ठा एवं उत्साह अनुकरणीय है, वंदनीय है. 'कथाबिंब' के लिए उनसे बातचीत प्रस्तुत कर रही हैं कवियित्री __श्रीमती मधु प्रसाद.__

• सर, आपने कहानी, कविता, खंडकाव्य, ग़ज़ल आदि साहित्य की लगभग प्रत्येक विधा पर अपनी लेखनी निरंतर प्रवाहमान बनाये रखी है. आपका रचना संसार विराट है. इससे पूर्व कि मैं आपके द्वारा प्रणीत साहित्य संसार में विचरण करूं, जानना चाहूंगी इस यात्रा का प्रारंभ, परिवार, प्रकृति एवं परिवेश.

मधु, मेरी साहित्य यात्रा का आरंभ कब और कैसे हुआ कहना बड़ा कठिन है. मैंने अपने संस्मरण 'अतीत की झलकियों में' उन क्षणों का उल्लेख किया है पर वह भी पर्याप्त नहीं है. मेरे पूर्वज जिला हरदोई ग्राम भगवंत नगर के निवासी थे. फिर परिस्थिति वश वे उत्तर प्रदेश के यमुना पार क्षेत्र बुंदेलखंड में आये और फिर वहीं बस गये. मेरे पिता श्रद्धेय स्व. बाबूराम मिश्र जिला हमीरपुर प्रशासन के अंतर्गत मिडिल हाई स्कूलों में सहायक और प्रधानाध्यापक थे. मेरी ननिहाल हमीरपुर के क़स्बे व तहसील राठ में है. मेरे बाबा तहसील व क़स्बा मौदहा में रहते थे. जब मैं पांच वर्ष का था उस समय बहुत दुःखद परिस्थितियों में मेरे पिता का स्वर्गवास हो गया था. मेरी मां ने ही मेरा लालन-पालन किया और जो मैं आज हूं उन्हीं के त्याग एवं प्रयत्नों के कारण हूं. पिता की भांति वे भी तत्कालीन शिक्षा विभाग में शिक्षिका थीं. पिता के जीवनकाल में ही उन्होंने मिडिल तक शिक्षा ग्रहण की थी पर बाद में प्रयाग महिला विद्यापीठ से 'विदुषी' और 'सरस्वती' की परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं. उनका मेरे जीवन पर गहरा प्रभाव रहा.

• आपने एक बार मुझे बताया था कि उस समय की सुप्रसिद्ध कलाकार देविका रानी से आपकी भेंट हुई थी. यदि उस समय आपने देविका रानी की बात मान ली होती तो आप बंबई में बस गये होते और सितारों की दुनिया में सितारा बन कर चमकते. जानना चाहूंगी उस समय, उस प्रलोभन से आप अपने को बचाकर कैसे साहित्य साधना से जुड़ पाये.

हां, १९४१ की दीपावली के अवसर पर मैं मुंबई (बंबई) गया था. मलाड स्थित बॉम्बे टॉकीज की सर्वे सर्वा श्रीमती देविका रानी को एक और गीतकार की आवश्यकता हुई. उन्होंने प्रदीप जी से कहा. प्रदीप जी से मेरा परिचय १९३६-३८ में अखिल भारतीय कवि सम्मेलन में हो चुका था. उन दिनों प्रदीप जी लखनऊ के ट्रेनिंग कॉलेज से सी. टी. डिप्लोमा कर रहे थे. गीत लिखते भी थे और गाते भी थे. उनका कंठ बहुत मधुर था. मंच से प्रदीप जी ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'पानीपत', सुनायी थी जिसको सुनकर हिमांशु राय और देविका रानी दोनों ही मंत्रमुग्ध हो गये थे. उन्होंने प्रदीप जी को गीतकार के रूप में अपने साथ ले जाना चाहा. प्रदीप जी ने पढ़ाई छोड़ दी और चले गये. सन १९४१ में जब फिर एक गीतकार की मांग हुई तो प्रदीप जी ने मुझे लिया. मैं अपने गीतों के साथ देविका रानी से मिला. मेरे गीतों को सुनकर उन्होंने मुझे चुन लिया और बोलीं 'अनजान' फ़िल्म की शूटिंग शुरू होनेवाली है. मैं शूटिंग के दौरान वहां रुकूं और गीत लिखूं. वे मुझे नियुक्ति

पत्र दे देंगी. यह मेरे लिए असमंजस की स्थिति थी या होनी को कुछ और करना था. मेरा एम. ए. फाइनल था. मैं हर दशा में एम. ए. करना ही चाहता था. मुझे लखनऊ वापस लौटना था. मैंने देविका रानी के सामने स्थिति रखी. मैंने कहा - स्क्रिप्ट के आधार पर मुझे फ़िल्म की सिचुएशन्स बता दी जायें, मैं प्रत्येक सिचुएशन के लिए २-२ गीत लिख कर भेज दूंगा. परीक्षा के बाद उपस्थित हो जाऊंगा. पर वे इस पर सहमत न हुईं. मेरी भी विवशता थी. अतः लौट आया. फिर मुझे अपनी मां और पत्नी का ध्यान आया और फ़िल्म क्षेत्र में जाने का विचार छोड़ दिया. शायद प्रारब्ध में यही था.

• आपने साहित्य की अनेकों विधाओं को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है. आपकी दृष्टि में आपके निकट कौन सी भाषा सबसे अधिक रही है?

हिंदी, उर्दू और अंग्रेज़ी तीनों भाषाएं मुझे प्रिय हैं. ये मेरे साहित्यिक परिवार की अविभाज्य अंग हैं. हिंदी मेरी मां है, उर्दू बहन और अंग्रेज़ी मेरी पत्नी है.

• आपका हिंदी उर्दू एवं अंग्रेज़ी तीनों भाषाओं पर समानाधिकार है. एवं तीनों भाषाओं में आप सृजनशील रहते हैं. क्या क्रम रहा? आपने हिंदी के छंद, अंग्रेज़ी की वर्स एवं ग़ज़ल, नज़्म, शेर आदि को एक ही प्लेटफॉर्म पर शोभित किया है. तीनों भाषाओं का अद्भुत संगम है. आपके साहित्य संसार में. इतना सब कैसे संभव हुआ?

मेरी दृष्टि में आयु और सृजनशीलता का कोई सीधा संबंध नहीं है. यह सब मां शारदा की अहैतुकी कृपा है. मैं आज तक नहीं जान पाया कि जब मैंने प्रारंभ से ही उर्दू पढ़ी ही नहीं और न आज भी अरबी या फारसी लिपि मैं पढ़ या लिख पाता हूं तो उस भाषा में शेरो-शायरी कैसे करता हूं और पाठकों तथा मित्रों से सम्मान पाता हूं. एक बात अवश्य है कि यह सब अवध के परिवेश और पूर्वजों के संस्कारों का फल हो सकता है. मैं श्री सत साईंबाबा का समर्पित भक्त हूं और उनकी प्रेरणा से सारे कार्य करता हूं. यह सब प्रभु कृपा है.

• अंग्रेज़ी साहित्य के आप परम विद्वान अध्येता रहे हैं. आप अंग्रेज़ी के शिक्षक रहे हैं. कुछ पुस्तकों का आपने हिंदी अनुवाद भी किया है. हिंदी अंग्रेज़ी का निरंतर तालमेल कैसे बैठाते रहे?

अनुवाद के माध्यम से हिंदी को समृद्ध करना यह भावना और लगन शिक्षक के रूप में १९५० से जगी. फलस्वरूप १९५५ में ही अपने छात्रों एवं सर्व साधारण के लिए 'एनथोलॉजी ऑफ कोटेशन्स' (सूक्ति संग्रह) का प्रकाशन हुआ. इसमें विश्व की ख्याति प्राप्त विभूतियों तथा अंग्रेज़ी साहित्य के प्रमुख कवियों एवं लेखकों की प्रचलित उक्तियां अपने हिंदी अनुवाद के साथ संग्रहीत हैं. दोनों भाषाओं के प्रति असीम अनुराग बचपन से ही स्वभाव बन गया था.

• उर्दू भाषा एवं साहित्य से कैसे जुड़ना हुआ? उर्दू में सर्वाधिक किससे प्रभावित रहे?

जैसा मैंने पहले बताया १९३८ से ही ग़ज़ल लिखना शुरू कर दिया था. तब मैं बी. ए. प्रथम वर्ष का छात्र था. पहली ग़ज़ल जो जनवरी १९३८ में लिखी थी उसका मत्ला था -

उठा है दर्द जिगर में दबाये बैठे हैं ।
यहां न आने की वो क़स्म खाये बैठे हैं ।।

पर लिपि देवनागरी थी. सन १९४० में जब मैं लखनऊ आया तो उर्दू का माहौल था. यूनिवर्सिटी में और शहर में जगह-जगह मुशायरे और महफिलें होती थीं. उनमें भाग लेने लगा. तभी अपनी पहचान बनाने के लिए 'नियाज़' तख़ल्लुस रख लिया. किंतु अपनी हिंदी रचनाओं में इसका उपयोग नहीं करता था. पर यह ज़्यादा दिन न चल सका और लोग मुझे 'नियाज़' के नाम से ही संबोधित करने लगे.

उर्दू साहित्य विशेषकर शायरी से मेरे संपर्क का श्रेय पं. राम नरेश त्रिपाठी जी को जाता है. उन्होंने चार भागों में कविता कौमुदी नामक संग्रह निकाला था. उनमें से चौथा भाग उर्दू शाइरी का था. इसमें उर्दू की उत्पत्ति, विकास और लोकप्रियता के साथ-साथ प्रमुख उर्दू शाइरों के संक्षिप्त जीवन चरित्र और अलग-अलग विधाओं में रचनाएं - ग़ज़ल, नज़्म, मुसद्दस, कसीदा, मरसिया, आदि सभी के उदाहरण थे. सभी शाइरी प्रेमियों की भांति ग़ालिब, जौक़, मीर तकी मीर, जिगर मुरादाबादी, जोश मलीहाबादी आदि मुझे अधिक प्रिय थे. बाद के शायरों में इक़बाल, चक़बस्त, अकबर इलाहाबादी और फ़िल्म क्षेत्र से जुड़े शाइर - साहिर लुधियानवी, शकील बदायूंनी, रघुपति सहाय 'फ़िराक' और अली सरदार जाफरी का उल्लेख न करना गुस्ताख़ी होगी. जाफरी तो गिरिजा कुमार माथुर की

तरह मेरे यूनिवर्सिटी के मित्र थे.

• आप अपने समकालीन बहुत सारे शिखरस्थ साहित्यकारों के संपर्क में रहे हैं. कुछ उल्लेख करें.

यह मेरा सौभाग्य रहा. राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त का मुझे आशीर्वाद मिला. मेरी पहली काव्यकृति 'कारा' की भूमिका आज से अर्धशती पूर्व उन्होंने ही लिखी थी. बाबू वृंदावन लाल वर्मा, बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' पं.श्रीनारायण चतुर्वेदी, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, डॉ. राम विलास शर्मा, निराला, महादेवी वर्मा का मैं स्नेह भाजन रहा. यह मेरा परम सौभाग्य एवं भगवत्कृपा है. इनके पत्र अभी तक मेरे पास सुरक्षित हैं. दूसरा वर्ग मेरे कवि मित्रों का है. इनमें गिरिजा कुमार माथुर, शिव मंगल सिंह 'सुमन', चंद्र प्रकाश वर्मा, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, चंद्रमुखी ओझा 'सुधा', गंगा प्रसाद मिश्र, बलवीर सिंह 'रंग', वीरेंद्र मिश्र, शुकदेव शर्मा 'लबरा', रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' आदि का है. खेद है ये सब मुझे छोड़कर चले गये. वह समय ही दूसरा था.

• अपने कृतित्व के विषय में कुछ जानकारी देना चाहेंगे?

मेरे कृतित्व से संबंधित एक पुस्तक 'समय जयी साहित्य शिल्पी - भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज़' - व्यक्तिव्य और कृतित्व' प्रकाशित की गयी है. 'दिव्य नर्मदा' जबलपुर के संपादक संजीव वर्मा 'सलिल' इसके संपादक हैं. इसमें २००३ तक की मेरी साहित्यिक गतिविधियों का उल्लेख हैं. मैंने गिना तो नहीं किंतु लगभग तीस कृतियां तो हो गयी हैं. इनमें तीन खंडकाव्य, सात काव्य संग्रह, छः ग़ज़ल तथा नज़्म संग्रह, और दो अंग्रेज़ी काव्य संग्रह हैं. गद्य में दो कहानी संग्रह, एक संस्मरण संग्रह और एक समीक्षा संग्रह है. अनुवाद हिंदी से अंग्रेज़ी में दो हैं और अंग्रेज़ी से हिंदी में तीन हैं. शिक्षा के क्षेत्र में चार पुस्तकें अंग्रेज़ी भाषा शिक्षण से संबंधित हैं. तीन कृतियां बाल साहित्य के अंतर्गत हैं.

• अहम् से ओंकार, प्रणय से प्रणव की यात्रा की है आपने. हर भक्त साहित्यकार नहीं होता. दर्शन से आत्मदर्शन, आध्यात्म की यात्रा पर कुछ प्रकाश डालें.

साहित्य के अतिरिक्त मेरे लेखन का प्रमुख क्षेत्र आध्यात्म है. रुचि तो प्रारंभ से ही रही. किंतु श्री सत्य साईंबाबा के सान्निध्य में रहकर दस वर्ष में जो मैंने देखा और सीखा उसने सृजन के अनंत द्वार मेरे लिए खोल दिये. मेरा आध्यात्मिक साहित्य तीन भागों में विभाजित है. प्रथम मौलिक साहित्य - अंग्रेज़ी में दो, हिंदी में एक रचना. द्वितीय - श्री सत्य साईंबाबा के समय-समय पर दिये हुए प्रवचनों का अनुवाद अंग्रेज़ी से हिंदी में. तृतीय - स्वामी महेश्वरानंद द्वारा लिखित साईंबाबा और नर नारायण गुफ़ा आश्रम का हिंदी में संपादन और अंग्रेज़ी में अनुवाद.

• समीक्षक के रूप में भी आपने बेलाग़, बेझिझक आलोचनाएं की हैं. आपका अंदाज़े बयां हमारे लिए प्रेरणास्पद है क्योंकि सच को कहना भी आजकल बहुत कठिन हो गया है. आपमें सच कहने की अदभुत कला है. यह आपकी सकारात्मक सोच का कमाल है.

मधु, आप जानती हैं मूलतः मैं कवि हूं. अतः जब कोई रचना मेरे सामने आती है तो सर्वप्रथम उसमें काव्य तत्व खोजता हूं. किंतु लिटरेटी क्रिटीसिज़्म (साहित्यालोचना) का अध्यापक होने के नाते कुछ सिद्धांत ध्यान में रहते हैं. जिस कृति में इन दोनों का समन्वय होता है वह निश्चय ही सुंदर लगती है. हमारे संस्कृत के आचार्यों ने भी इस तत्व को लेकर सौंदर्य की व्याख्या की है. कक्षा में मेरे छात्र जब तक उसमें डूब न जाते थे मुझे संतोष न होता था. हमारे रीतिकालीन कवियों ने भी इस पर बल दिया है.

तंत्री नाद कवित्त रस, सरस-राग रति रंग ।
अनबूडे बूडे तरे, जे बूडे सब अंग ।।

रचनाकार को मेरी समीक्षा रुचिकर लगती है या नहीं इस पर ध्यान कम देता हूं पर उस कृति में जो गुण हैं उनकी प्रशंसा करना समीक्षक का कर्तव्य है. कृतिकार को उससे प्रोत्साहन मिलता है.

• बंबई से लेकर अहमदाबाद तक की एक लंबी यात्रा की है आपने जो अलग-अलग पड़ाव पर रुकती रही, रुख बदलती रही फिर भी चलती रही. कया कभी याद आते हैं देविका रानी, हिमांशु राय के साथ बिताये हुए क्षण? कोई अफ़सोस ?

तनिक भी नहीं, मैं समझता हूं ईश्वर जो करता है भले के लिए करता है. काव्य के क्षेत्र में मैं आज जहां हूं फ़िल्म क्षेत्र में रह कर वह संभव न होता. हमारे कवियों और उपन्यासकारों में मुंशी प्रेमचंद, भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर, नरेंद्र शर्मा, शैलेंद्र, नीरज कितने ही गये पर शैलेंद्र को छोड़ कर बाकी सब वापिस

आ गये. फ़िल्म का गणित कुछ दूसरा ही होता है.

• आपने साहित्य की एक लंबी यात्रा की है. आपकी लेखनी कभी रुकी नहीं, कभी थमी नहीं, सोयी नहीं. यहां तक पहुंचने में कोई रुकावट, कोई बाधा? नौजवान पीढ़ी के लिए क्या कहेंगे?

मैंने १९३५ से कविता लिखना आरंभ किया और अभी तक लिख रहा हूं. उसका कारण हो सकता है यह हो कि कालानुसार विचारों, प्रवृत्तियों, सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन में जो नये परिवर्तन हुए और साहित्य में उनकी अभिव्यक्ति हुई उसे मैंने चुनौती के रूप में स्वीकारा और यथा सामर्थ्य लिखा, पर मैं अपनी पहचान बनाने के चक्कर में किसी के पीछे नहीं लगा. पिछली सदी के पांचवे दशक में लिखे गये मेरे दो गीतों की प्रारंभिक पंक्तियां इसका प्रमाण हैं.

प्रथम - *मैंने हार नहीं मानी है/ तुमने पथ रोका है मेरा/*
मैंने चलने की ठानी है.

द्वितीय - *जीवन में विश्वास चाहिए/ हृदयों में सागर/*
नयनों में मेघों का इतिहास चाहिए.

युवा पीढ़ी से यही मेरा निवेदन है. यही मेरी यात्रा का आधार रहा है.

• सर, आपकी प्रतिभा, पुस्तकें अनेक बार अलंकृत हुई हैं, सम्मानित हुई हैं. कुछ संक्षेप में बतायें जिससे शीघ्र ही हताश एवं इन्सटैंट रिवार्ड की अपेक्षा रखनेवाली नयी पीढ़ी को सकारात्मक चिंतन की प्रेरणा मिल सके.

अलंकरण, सम्मान या पुरस्कार को किसी भी रचनाकार की श्रेष्ठता या गुणवत्ता का मापदंड नहीं कहा जा सकता. विशेषकर आज के युग में. वह हो भी सकता है और नहीं भी. साहित्य साधक को स्वांतः सुखाय 'तुलसी रघुनाथ गाथा' भावना से काम करना चाहिए. यदि आपकी रचना में मर्म को स्पर्श करने की क्षमता है, तो आज नहीं तो कल सम्मान मिलेगा ही. जब राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त ने मेरी कृतियों, 'कारा' एवं 'गीत रश्मि' पर अपना आशीर्वचन लिखा, मुझे लगा सब कुछ मिल गया. वैसे पंद्रह-बीस साहित्यिक संस्थाओं ने सम्मानित किया है. पर आपका सच्चा सम्मान तो आपके पाठक करते हैं. जब उनके पत्र आते हैं तो भाव विभोर हो जाता हूं.

• साहित्य का क्षेत्र भी अखाड़ेबाज़ी, शिविर, वाद आदि से अछूता नहीं रह गया है. कैसे बचा पाये अपने आपको एवं साहित्य को किसी ख़ेमे के बंधन से?

मैं किसी वाद का कभी पक्षधर नहीं रहा. फलस्वरूप ६० वर्ष की साधना के बाद भी अनजाना ही हूं. पचास वर्ष पूर्व लिखे एक गीत की पंक्तियां हैं -

मैं प्रणेता हूं किसी के स्नेह का भिक्षुक नहीं हूं!
प्राप्य तो स्वीकार, यदि संकोच तो इच्छुक नहीं हूं.
मैं विजेता हूं विजय की हार लेकर क्या करूंगा?
मैं किसी के स्नेह का संसार लेकर क्या करूंगा?

• क्या रहस्य है इस अदम्य जिजीविषा एवं जीवंतता का?

बड़ा सुंदर प्रश्न है - अदम्य जिजीविषा एवं जीवंतता. मैं पूछता हूं यदि यही न हो तो विकल्प क्या है? जब तक जीवन है तब तक चलना है. चार पंक्तियां कहता हूं -

मेरे जीवन में गति भी है गहराई भी ।
यदि हैं उत्तुंग शिखर कूप ओ' खाई भी ।
पर इस सबसे होकर आगे जाना ही है
तन से हूं दुर्बल पर शिव को पाना ही है ।

• आजकल क्या लिख रहे हैं?

मैंने हिंदी के बीस गीतकारों, नवगीतकारों के गीतों का अंग्रेज़ी अनुवाद किया है. वह पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशित होकर आनेवाली है. पुस्तक का नाम है 'कन्टमपरेरी हिंदी पोइट्री' (समकालीन हिंदी कविता).

• चलते - चलते एक प्रश्न और. नयी पीढ़ी के रचनाकारों के लिए कोई संदेश? क्या कहना चाहेंगे?

गगन कुसुम यदि प्रिय है तो
अंबर तक उड़ना ही होगा ।
झंझा हो या हिम वर्षा हो
उसे चीर बढ़ना ही होगा ।
पंछी को तो केवल अपने
पंखों पर विश्वास चाहिए ।

एफ-एफ-४, बी ब्लॉक,
सनपॉवर फ्लैटस, गुरुकुल रोड,
अहमदाबाद- ३८००५१.

मधु प्रसाद
२९ गोकुल धाम सोसायटी, कलोल-
महेसाणा, राजपथ, चांदखेड़ा,
अहमदाबाद- ३८२४२४

बाइस्कोप

इन्सानियत और शराफ़त का पुजारी - के. ए. अब्बास

✍ सविता बजाज

(साहित्य और फ़िल्म का चोली दामन का साथ है. हमारे विशेष अनुरोध पर जानी मानी फ़िल्म, टी.वी., मंच कलाकारा व पत्रकार सुश्री सविता बजाज 'कथाबिंब' के लिए चलचित्र जगत से संबद्ध साहित्यकारों के साथ बिताये क्षणों को संस्मरण के रूप में प्रस्तुत कर रही हैं. अगले अंकों में पढ़िए रफ़िया मसूल उल अमीन, गुलज़ार, सुधाकर शर्मा आदि के बारे में.)

मशहूर लेखक के. ए. अब्बास की लेखनी में गज़ब का जादू था. जीवन की सच्चाइयां आईने की तरह साफ़ और पारदर्शी और पढ़ते-पढ़ते मैं अक्सर सोचती - यह शख़्स ज़रूर किसी जादुई शक्ति का मालिक होगा! इससे ज़रूर मिलूंगी.

मणी कौल की फ़िल्म 'उसकी रोटी' में मैं जब सह-नायिका बनी तो सोचा चलो थोड़ी स्ट्रगल कर ली जाये. इनकी 'सात हिंदुस्तानी' मुझे बहुत अच्छी लगी थी और राजकपूर की दर्ज़नों फ़िल्मों के रचयिता. उन दिनों फ़िल्म इंडस्ट्री में आर्ट फ़िल्मों का भूत घुस चुका था. बिना मेकअप, टूटी-फूटी शक्लों वाले सब कलाकार खप जाते थे. हां बस एक टोकरा टेलेंट की ज़रूरत ज़रूर थी. नये-नये चेहरे दिल्ली छोड़ बंबई को अपना बसेरा बना रहे थे, जिसमें अमिताभ बच्चन भी शामिल था. अब्बास साहब नये-नये लोगों को अपने ग्रुप में शामिल कर रहे थे. उनके मसीहा बन रहे थे. लिहाज़ा जुहू वाले घर पर जलाल आगा, शबाना आज़मी, टीनू आनंद, पत्नी (जलाल की बहन) वग़ैरह पचासों लोग रोज़ इनके घर पर हाज़री देते, क्योंकि अब्बास साहब 'इप्टा' से भी जुड़े थे. मुझे तो आपका घर ही रंगमंच-सा दिखता. चाय के दौर चलते, कला की बातें होतीं तो मन तरोताज़ा हो जाता. मुझे देखते ही बोले - लो, एक और मीना कुमारी आ गयी. सचमुच, उन दिनों मुझ पर मीना आपा जैसी दिखने का भूत सवार था. उन जैसा मेकअप करती. बाल संवारती और सफ़ेद कपड़े पहनती. आप 'नेक्सलाइट' फ़िल्म बना रहे थे जिसमें उत्पल दत्त, मिथुन चक्रवर्ती, स्मिता पाटिल भी थे. मुझे जलाल आगा के साथ एक आदिवासी लड़की की भूमिका मिली.

मैं हैरान न कोई स्क्रीन टेस्ट, न भद्दा मज़ाक और न लॉन्ग ड्राइव या डिनर की बातें. बिना किसी लाग लपेट के काम मिल गया, शायद मेरी क्षमता पर इन्हें भरोसा था.

समय के साथ-साथ मैं इनकी भक्त बन गयी. जब भी समय मिलता इनके घर पहुंच जाती. इनकी बड़ी बहन जो उर्दू स्कूल में टीचर थीं मुझे बहुत प्यार करतीं. अगर मैं अपनी पूरी ज़िंदगी का निचोड़ कहूं तो फ़िल्म इंडस्ट्री में आज तक अब्बास साहब जैसा शरीफ़ और पाक इंसान, शायद ही पैदा हुआ हो. राजकपूर की पचासों फ़िल्में लिखीं लेकिन इंडस्ट्री का रंग अपने ऊपर नहीं चढ़ने दिया. आजीवन विवाह नहीं किया. मैं फ़िल्मों में नयी थी, सुंदर जवान थी, गुरू समान समझाते - सविता, मेरे अनुभवों से सीखो, तुम बहुत भली और सीधी हो. यह फ़िल्मी दुनिया तुम्हारे जैसे लोगों के लिए नहीं. लौट जाओ, दिल्ली. सचमुच 'आनंद' फ़िल्म जिसमें मैं नर्स थी, मात्र ७५ रू. मिले तो दिल टूट गया और अब्बास साहब की बात मानकर, दिल्ली लौट गयी.

जीवन में फिर ऐसा दौर आया कि न चाहते हुए मुझे बंबई का रुख़ करना पड़ा, फ़िल्म 'निशांत' के लिए, जिसने मुझे 'पोचम्मा' के पात्र के रूप में ख्याति दिलायी. काम मिलने लगा और मैं बस यहीं की होकर रह गयी. एक दिन अब्बास साहब का फ़ोन आया - सविता आ जाओ, फ़िल्म 'मि. एक्स' बना रहा हूं. शबाना की मां का रोल है. उस दिन बंबई पानी में तैर

रही थी लेकिन मैंने शूटिंग स्थल पर पहुंच कर यह साबित कर दिया था कि मैं सही मायने में आपकी भक्त थी.

'मि. एक्स' पूरी न हो सकी. अब्बास साहब अल्लाह को प्यारे हो गये. आज अब्बास साहब की बहुत सी बातें याद आ रही हैं. मैं जब कभी इनकी पुरानी-सी काली कार में लिफ्ट लेती तो गाड़ी को बार-बार धक्का मारना पड़ता. मैं कहती - सर, इस खटारा की अब छुट्टी कर दो. सुनकर हंसते और कहते - अरे भई नयी के लिए पैसे कहां से लाऊं. यह भी मेरी तरह पुरानी हो गयी है. देखो कब तक साथ निभाती है? मैं कभी-कभी चुटकी भी लेती - अब्बास साहब आप हमेशा मेरी तरह अकेले घूमते हो, क्या कोई संगी-साथी नहीं चुना? फौरन कहते -सविता चलो, हम दोनों दोस्त बन जाते हैं. मैडम जब आप मेरी बगल में बैठती हैं तो देखने वाले क्या आपको मेरी बहन समझेंगे? यह हमारी दोस्ती नहीं तो क्या है? है इस जैसा कोई पाक रिश्ता दूसरा? हम दोनों एक दूसरे की बहुत इज़्ज़त करते हैं. कोई बुरी बात नहीं की कभी.

एक बार घर पर आपका पांव फिसल गया. काफ़ी चोटें लगीं, हड्डियां टूट गयीं. मैं इन्हें देखने पहुंची तो बोले - जल्दी आया करो, मैं घर पर नहीं होता लेकिन तुम्हारी आपा तो होती हैं ना. सचमुच अभी उस घर में नहीं गयी. जहां सिर्फ़ आपा थीं, अब्बास साहब नहीं. कई बार अब्बास साहब की लिखी कोई फ़िल्म देखती हूं तो सोचकर हैरानी होती है कि कीचड़ में रहकर कमल कैसे बने रहे, कैसे फ़िल्म इंडस्ट्री की रंगीनियों से अपने आपको बचाये रखा. इन्सानियत और शराफत जिसका मजहब था, क्यों इस जहां को इतनी जल्दी छोड़ गया. सचमुच अब्बास साहब की जब याद आती है तो दिल में हूक सी उठती है. सर आप तो चल दिये लेकिन मैं ढलती उम्र में भी अपने ही बोझ को अपने कंधों पर उठाये जीवन से जूझ रही हूं! कहां हैं आप?

द्वारा श्री साईनाथ एस्टेट,
डी-३, बी-२, सह्याद्री नगर,
चारकोप, मुंबई- ४०० ०६७
फोन : ९२२३२०६३५६

लघुकथा

विकास के सोपान

राकेश 'चक्र'

ट्रेन तेज़ रफ़्तार से दौड़ रही थी. आरक्षित सीट पर एक युवक लेटा-लेटा मोबाइल पर गेम खेलने में व्यस्त और मस्त था. यकायक उसके मोबाइल की घंटी बज उठी.

'हलो! विभु ठीक तो हो.'

हां! हां! बिल्कुल ठीक हूं।'

'आजकल क्या कर रहे हो?'

'एक इंटर कॉलेज में प्रवक्ता हूं.'

'कुछ लेना-देना पड़ा?'

'यार! पूरे चार लाख देने पड़े, तब जाकर नौकरी मिली है.'

'चलो अच्छा हुआ, नौकरी लग तो गयी. मेरा तो भाग्य ही ख़राब था. जो अब तक धक्के खा रहा हूं. एक इंटर कॉलेज में दो लाख सत्तर हजार में बात पक्की भी हो गयी थी, लेकिन मेरे एक साथी ने मेरी मति फेर दी कि कॉलेज दूसरे संप्रदाय का है. कहीं तुम्हारे रुपये ही गढ़े में न चले जायें... आज पछता रहा हूं... मैं भी अच्छा-ख़ासा लेक्चरर होता...'

युवक के सामने वाली सीट पर बैठा सहयात्री सोचता रहा कि गुरू, यानी ज्ञान देनेवाला वास्तव में ही विकास के सोपान चढ़ रहा है.

९०, बी, शिवपुरी, मुरादाबाद- २४४००१

वातायन

पुस्तक-समीक्षा

समग्र भाव चेतना का व्यापक परिप्रेक्ष्य

राधेलाल बिजघावने

गुलदस्ता (ग़ज़ल-संग्रह) : **ऋषिवंश**
प्रकाशक : डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि., ओखला इंड. एरिया, फेज़-२, नयी दिल्ली- ११००२०. **मूल्य :** ७५ रु.

गुलदस्ता ऋषिवंश का- राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक ढांचे में व्याप्त विकृतियों, विसंगतियों के दुखद अहसास करनेवाला तथा करारी चोट करनेवाला पीड़ादायक अनुभवशीलता का ग़ज़ल संग्रह है, जिसमें घर-परिवार, परिवेश, समाज और देश में सक्रिय रूप से कार्यरत लोगों की विविध स्तरीय मनःस्थितियों, विडंबनाओं तथा ज़हरीले भाव-संवेदनों का यथार्थपरक प्रस्तुतीकरण है.

'गुलदस्ता' संग्रह की ग़ज़लें इंसानियत तथा मानवीय संभावनाओं को बचाये रखने का अथक प्रयास करती हैं. इसलिए इन ग़ज़लों में लोगों की त्रासदी का न केवल प्रामाणिक परिदृश्य प्रस्तुत किया गया है, बल्कि स्वार्थों की संकीर्ण मानसिकता को बे-नकाब करने की ज़रूरी पहल भी की गयी है.

'गुलदस्ता' संग्रह की ग़ज़लें पाठकीय चेतना को झकझोरती हैं तथा वक़्त की सच्चाई से आंखें चुराकर भागनेवालों पर निग़ाहें रखती हैं तथा अपने समय के तमाम विरोधों तथा असहमतियों को चुपचाप ग्रहण करती हुई दकियानूसी ख़्यालों की रूपरेखा के तमाम सर्किटों का विखंडन करती है.

ऋषिवंश अपनी तरह के अलग ही उसूलों और आदर्शों के ग़ज़लकार हैं, इसलिए मानवीय मूल्यों के बिखराव को कतई सहन और पसंद नहीं करते हैं. ग़रीबी, पिछड़ापन, रूढ़िवादी जहनियत- मनुष्य को भीतर से तोड़कर खोखला कर देती है, जिसकी तकलीफ़ों की वजह से कोई रास्ता ही दिखाई नहीं देता. ऋषिवंश की ये पीड़ाएं इनकी ग़ज़लों में रू-ब-रू संवाद करती हैं.

कचरे में कुछ ढूंढ़ लेना खाने को,
ग़रीबों का रहना-खाना ढोर सा ।।
अपना अपना सच सभी बतलायेंगे,
मिलके हो जायेगा सब कुछ शोर सा ।।

'गुलदस्ता' संग्रह की ऋषिवंश की ग़ज़लें सभी तरह के लोगों से ताल्लुकात रखती हैं तथा सभी सियासी सोचवाले लोगों से कोई परहेज नहीं करतीं. इसलिए संग्रह की ग़ज़लें निजी तथा सार्वजनिक मानवीय जीवन के ख़राब ख़्यालों तथा आचरणों की कतई अनदेखी नहीं करतीं. इसलिए ये ग़ज़लें व्यापक परिप्रेक्ष्य में समग्रता को समझने पर बल देती हैं. इन ग़ज़लों में आर्थिक बदहाली तथा राजनैतिक चारित्रिक गिरते मूल्यों को प्रस्तुत किया गया है :

दिलकश भरी बहार में डबडब सी निग़ाहें,
अंदर कहीं से उठती हैं दर्दीली कराहें ।।
ख़ुशियों के बहाने कई वैसे तो हैं यहां पर,
पर दर्दमंद के लिए बस अश्क और आहें ।।

'गुलदस्ता' संग्रह की ऋषिवंश की ग़ज़लें शोषितों-वंचितों की पक्षधर हैं और बदलाव की क्रांति पर भरोसा करती हैं. बर्बरों के खिलाफ़ ये ग़ज़लें पूरी ताकत से खड़ी होती हैं और आजाद तथ शांति-सुखमय जीवन जीने का अवसर प्रदान करती हैं.

ऋषिवंश अत्यंत संवेदनशील, अनुभवी, ग़ज़लकार हैं इसलिए आसपास की भयावहताओं, निराशाओं व असहायताओं का गहराई से अनुभव करते हैं, इसलिए इनके भीतर गहरा भावनात्मक आवेग, बेचैनी तथा विद्रोह की भाव-संवेदना मौजूद है. ये एक आत्मविश्वासी तथा साहसी ग़ज़लकार भी हैं. इसलिए इनकी अदभुत दृष्टि, वैचारिक ताकत और जुझारू व्यक्तित्व का कोई सानी नहीं-

दुनियादारी के ख़तरनाक मकड़जाले हैं,
ज़िंदगी हादसों-हालातों के हवाले हैं ।।
सभी शहरों की एक जैसी है कारस्तानी,
सफ़ेदपोश हैं दिन में रात में काले हैं ।।

'गुलदस्ता' संग्रह की ऋषिवंश की ग़ज़लें विविध रंगों की हैं. इनमें मानवीय सोच विचारों के रंगो-ढंगों के विभिन्न 'शेड्स' हैं जो कि प्रयोजनयुक्त और प्रयोजनमुक्त भी हैं. ये ग़ज़लें मनुष्य को आत्मलोचन का अच्छा मौक़ा देती हैं तथा आत्मनिंदा की ओर कदम बढ़ाती हैं.

तनहाई में बुलाकर रो रो बताया उसने,
मरने लगे हैं बच्चे, अब रोटियों के लाले ।।
रहता था एक पागल वीरान बस्तियों में,
कुछ तंज भूख वाले, कुछ दर्द इश्क वाले ।।

'गुलदस्ता' संग्रह की ग़ज़लें सामान्य हैसियत के लोगों के आर्थिक-सामाजिक हितों की हिफ़ाजत की हैं. ये ग़ज़लें मनुष्य की हैसियत की सही रूप में पहचान कराती हैं तथा नैतिक मूल्यों की गिरावट को रोकती हैं. 'गुलदस्ता' संग्रह की ऋषिवंश की ग़ज़लें मनुष्य को ऐसे समुदाय में बदल देती हैं जो वास्तविक आधार पर एकजुट होता है. ये आस्था और आचरण को विकसित करती हैं.

'गुलदस्ता' संग्रह की ग़ज़लों में ताज़गी है. ये ग़ज़लें मनुष्य को उसके मूल्यों का उचित दर्जा दिलाती हैं तथा उसके द्वंदात्मक स्वभाव को ताकत देती हैं.

ई-८/७३, भरतनगर (शाहपुरा),
अरेरा कॉलोनी, भोपाल-४६२०३९

धुप-कुंदन की रोशनी में

श्याम खरे

धूप-कुंदन (हाइकु रचनाएं) : **डॉ. सुरेंद्र वर्मा**
उमेश प्रकाशन, १०० लूकरगंज, इलाहाबाद-१
मूल्य : १२५/- रु.

सर्वप्रथम तो मैं डॉ. सुरेंद्र वर्मा का अभिनंदन करना चाहूंगा कि उन्होंने काफ़ी विलंब से ही सही, अपने हाइकुओं का यह संकलन 'धूप कुंदन' प्रकाशित करवाया.

इन दिनों उक्तियां, बोध वाक्य, चुटकुले या कुछ भी ५-७-५ अक्षरों में लिखकर उसे हाइकु कहना एक आम बात हो गयी है. शायद इसीलिए डॉ. सुरेंद्र वर्मा ने अपने प्राक्कथन में हाइकु के विषय में यह प्रश्न खड़ा किया है कि क्या ५-७-५ के अनुशासन में तीन पंक्तियों की हर कविता हाइकु है ? हां, अनुशासन, कलेवर या आकार के स्थूल नियमों का पालन होने से उस रचना को हाइकु तो कहना पड़ेगा किंतु यह मात्र हाइकु का शरीर है. उसकी आत्मा पर विचार किये बिना हाइकु परिपूर्ण नहीं होगा. डॉ. वर्मा ने हाइकु में 'काव्यतत्व' की बात की है जो हाइकु के मौलिक कथ्य और अभिव्यक्ति के सौंदर्य में निहित होता है. किंतु मैं इसमें एक और विचार जोड़ना चाहूंगा- हाइकु की पहली दो पंक्तियां पूर्वार्ध है, उसका 'ले आउट', यानी उसकी लंबाई-चौड़ाई है; किंतु तीसरी पंक्ति जो हाइकु का उत्तरार्ध है, हाइकु की ऊंचाई है. मुझे लगता है इस तीसरी पंक्ति से ही पहली दो पंक्तियों के अर्थ को एक गहरा अर्थ है. उसके परे, गहराई से एक बड़ा, हृदयस्पर्शी विषय और अर्थ हाइकु से उभरना चाहिए. यही सफल हाइकु का मर्म है. इस संदर्भ में 'धूप कुंदन' से दो हाइकु प्रस्तुत हैं-

१. *'पतझर है/ आहट बसंत की / क्यों उदास हो ?'*

मानव जीवन का एक सच. समयानुसार मृत्यु को सहजता से लेना पड़ेगा क्योंकि नया जन्म तो आना ही है. यह सृष्टि-क्रम अंतहीन है. निरंतर है. इस हाइकु में यही आध्यात्मिक गहराई 'क्यों उदास हो?' से परिलक्षित होती है.

२. *'लिये लालसा / एक फूल की बस / जिया कैक्टस.'*

बेशक जीवन कैक्टस सरीखा रूखा, कंटीला ही है. हम रोज़ इच्छा लालसा के स्वप्न लिये, सुबह से शाम तक जूझते हैं, महीने, वर्ष और सारा जीवन, ऐसे ही निकल जाता है. कैक्टस में फूल बस एक बार ही आता है और हमारा कोई एक ही स्वप्न पूरा हो पाने में सारा ख़ुरदरा जीवन बीत जाता है.

एक विशेष बात और है. उपरोक्त दोनों ही हाइकु प्रकृति से हैं और इन्होंने मानव जीवन में गहराई से होनेवाली हलचल को छुआ है. दोनों में ही जब तक तीसरी पंक्ति पर गौर न करें, अर्थ नहीं बनता.

ऐसे ही कुछ और हाइकु भी उल्लेखनीय हैं-
बौना हो गया/ वस्तुओं के समक्ष / क़द आदमी.
सुख हमारे / भागती सी शाम की / परछाइयां.
दिया न बाती / निविड़ अंधकार / मन एकाकी.
और ये भी-
तुम न आये / रोज़ एक कहानी / गढ़ता दर्द.
ठहरी कब / रिसती लगातार / वक़्त की बूंदें.
अभिलाशाएं / मन में ही जो रहीं / फूल सी झरीं.

मजे की बात यह है कि सभी हाइकु मानवीय जीवन की सच्चाई और संवेदना को प्रतिबिंबित करते हैं. प्रकृति को फूल-पत्ते, झाड़-नदी, सागर, चांद-सूरज,

पशु-पक्षी तक ही सीमित रखना ठीक नहीं है. मनुष्य भी वस्तुतः प्रकृति का ही एक हिस्सा है. आत्मा, मन, संवेदना से ही प्रकृत्ति की सभी बातों को अर्थ मिलता है. बग़ैर मनुष्य के प्रकृति का कोई मतलब ही नहीं रहेगा. सामाजिक संदर्भ, मानव जीवन की संवेदना और मानव जीवन में घटनेवाली सभी बातें 'धूप कुंदन' के हाइकु समेटे हैं और साथ ही उनका अर्थ गांभीर्य हृदय को छूता है.

१४, जूना तुकोगंज, सब्ज़ी मंडी की गली, इंदौर (म.प्र.) ४५२००७

मिलन की पराकाष्ठा : मधुराधिप

गोवर्धन यादव

मधुराधिप (का.सं.) : **डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव**
प्रकाशन : ऋचा प्रकाशन, कटनी (म.प्र.)४८३५०१
मूल्य : १००/- रु.

डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव की छंद-बद्ध कविता में भाव-ऊर्जा और बुद्धि-ऊर्जा में इतनी गहरी सघनता है कि उसे अलग करके नहीं देखा जा सकता. कविता में शिल्प की क्लासिकी और अंतर्वस्तु की बौद्धिक सांद्रता के लिए जाने जानीवाली इन कविताओं का बुनियादी 'उत्स' 'मिलन' ही है.

'तुम अचल मुझे चंचल करती,
तुम उदासीन एक दृष्टा हो ।
मैं जगत गमन हूं क्रियाशील,
स्पंदरहित तुम स्त्रवरा हो ।।
मैं कितना ही दौड़ूं आगे,
तुम मेरे आगे चलती हो ।
फिर लक्ष्य भेदने से पहले,
तुम मुझे लक्ष्य पर मिलती हो ।।
या, मैं तृषा गहन तू मधुर उदधि,
तू वृहद पटल मैं चित्रांकित।
उपनिषद तुम्हारे ही हूं मैं,
पर मिल पाने में शंकित ।।

ग़ौरतलब है कि कवि द्वंद्व में पड़कर भी असमंजस का शिकार नहीं होता क्योंकि उसकी पक्षधरता स्पष्ट है. श्रीयुत श्रीवास्तव अपनी कविता में अक्सर अनुभूति और विचारशीलता की सशक्त और गतिमान संहति को ही संभव करते हैं. वे उन्हें एक दूसरे से विछिन्न होकर निरीह-यांत्रिकी या एकतरफ़ा नहीं होने देते. इसीलिए प्रेम और बौद्धिकता संघटित होकर उनके यहां आत्मबद्धता का समर्थ माध्यम बन जाते हैं -

तू धुंध गहन मैं गिरा शिखर,
तू बड़वानल मैं हूं पतंग ।
तू मरुथल मैं सिक्ताकण हूं,
तू मांसल रति और मैं अनंग ।।
गणना से बाहर विषम लिये,
हो समानंत अस्तित्व मान ।
हो गरल सुधा तुम एक साथ,
मैं ज्ञान विषय तुम विद्यमान ।।

कवि की विचारशीलता प्रेम की उदात्त अवधारणा को संभव बनाती है. उसकी बदौलत वह बृहत्तर दुनियां से विमुख प्रेम के भोगवाद में अपने बंदी सम्मोहित या नष्ट हो जाने की दुखद संभावना से विद्रोह करता है. वह कामलिप्त होने की बजाय, बाहर के प्रकाश से मुखातिब होने को अहम मानता है.

आज की उपभोक्तावादी संस्कृति के समय में जब हिंदी में कुछ लोग प्रेम के नाम पर भोगवाद का छद्म-विमर्श या कामदग्ध काव्य का अभियान चला रहे हैं, सही मार्ग निर्देश करनेवाली इस काव्य-दृष्टि का यहां विशेष महत्व है

सुंदर तू सुंदरतम से हैं,
रक्तिम संध्या सम मुख मंडल ।
स्मित तेरा झिलमिल तारे,
रवि शशि हैं कानों के कुंडल ।।
हैं निविड़ घनी तेरी अलकें,
तेरा मुख कमल उदित दिनकर ।
तू एक साथ दिन रात सुमुखि,
स्वर तेरे गीतों को निर्झर ।।

श्रीयुत श्रीवास्तव साहित्य की अनेक विधाओं में पारंगत हैं. इस कृति के भावों को पढ़कर उन्हें उन कवियों की जमात में मैं पाता हूं. जिनकी कविताएं भारतीय चिंतन, परंपरा और काव्य परंपरा की तमाम स्मृतियों और अंतर्ध्वनियों से प्रकाशित और समृद्ध हैं.

महान चेक कवि जॉन स्कासेल ने एक जगह लिखा है कि ''कवि कविता का 'इन्वेंशन' नहीं करता, बल्कि लंबे समय से कहीं छिपी कविता को वह 'डिस्कवर' करता हैं'' श्रीयुत श्रीवास्तव के छंद सारे मर्मों को खोलते हुए आगे बढ़ते हैं. उनमें एक नये ढंग का रोमान दिखाई पड़ता है, जो जीवन के दैनंदिन टकरावों के भीतर से पैदा हुआ है. वहीं वह, अपनी जड़ों को पहचानने की जिम्मेदारी से भी जुड़ा है.

इन तमाम छंदों के भीतर जो सतत चलनेवाला संवाद है, वह महज आत्मालाप नहीं है. यह संवाद रस अर्थ में है कि वह अपनी प्रेयसी से जुड़ने का, उसका सामीप्य पाने की लालसा लिये हुए है, वह उससे प्रेमालाप करने की संपूर्ण मंजी हुई भाषा में है, जो दो दिलों को जोड़ने के लिए एक पुल का काम करती है. उनकी रचनाएं जीवन के उत्सव को, उसके रस को प्राप्त करने का एक माध्यम हैं. निश्चित ही यह उनके जीवन की कोमल करुणाई संवेदनाओं की ख़ूबसूरत अभिव्यक्ति है. यथार्थ की प्रस्तुति एवं कहने के ढंग में असहमति हो सकती है. लेकिन कविताओं में अभिव्यक्त वास्तविकता के प्रत्यक्ष निदर्शन से इनकार नहीं किया जा सकता-

अल्हादयुक्त तेरे दर्शन,
तू ईश्वर की कृति सुंदरतम ।
मधु स्वर मधु व्यंजन मधु, निसर्ग,
मधुराधिप ते रखिलं मधुरम ।।
पर्णों में झिलमिल चंद्रकिरण,
मेघों से निःश्रत किरण जाल ।
तू है वसंत की सुखद धूप,
तू प्रखर धूप और ग्रीष्मकाल ।।

कविता में गहरी मननशीलता है और मानवीय संवेदन की कोमलता का अदभुत संयोग घटित होता है. उनके यहां चीज़ों का निथरा हुआ सूक्ष्म और गहन अवलोकन है, और वैचारिक स्पष्टता भी. वह अपने मौलिक चिंतन के बिलकुल नये तरह के विचारों को संभव करते हैं. इसीलिए उनकी कविता में एक रूप के सहारे कहें भोर की ताज़गी-सिरहन और आभा का स्पर्श है. एक तरल और पारदर्शी प्रवाह जिसमें कवि की आत्मा प्रकाशित है.

डॉ. श्रीवास्तव काव्य-दृष्य में एक लंबे समय से चुपचाप और विनम्रभाव से रचनारत हैं. किसी तरह की केंद्रीयता या शीर्ष-स्थानीयता हासिल करने की उच्चाकांक्षा उनमें नहीं है. गेय तथा छंदबद्ध कविता संग्रह के लिए साधुवाद.

१०३, कावेरी नगर,
छिंदवाड़ा (म.प्र.) ४८०००१

एक सफल दोहा कृति

प्रो. भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज़'

प्रिया तुम्हारा गांव (दोहे) : **अशोक 'अंजुम'**
प्रकाशन : संवेदना प्रकाशन, ट्रक गेट, कासिमपुर, अलीगढ़ (उ.प्र.) २०२१२७. **मूल्य** : १००/- रु.

भाई अशोक 'अंजुम' प्रकृति तथा मानवीय संवेदनाओं के वे कुशल चितेरे हैं जो एक ओर शब्दचित्रों के माध्यम से पाठक को मोह लेते हैं और दूसरी ओर अनुभूतियों के तारों को स्पर्श कर आपके तन-मन में एक झनझनाहट उत्पन्न कर देते हैं. कुछ चित्र देखिए-

रात गयी करवट लिये, हुई रसपगी भोर ।
खुलीं खिड़कियां आपकी, मन में उठी हिलोर ।।
बूंदों की अठखेलियां, प्रिया करें बेचैन ।
मन में बादल याद के, बरस करते नैन ।।
छनन-छनन-छन कर रही, आंगनवाली टीन ।
बूंदें कत्थक कर रहीं, दिवस हो गये तीन ।।

बड़ी संकेतात्मक पंक्तियां हैं. कुछ संवेदनाओं से ओतप्रोत दोहे भी देखिए -

आंगन की तुलसी जली, धूप पड़ी यों तेज़ ।
इक तुलसी ससुराल में, झुलसी बिना दहेज ।।
मिले ओंठ से ओंठ यूं, देह हुई झनकार ।
सहसा मिल जायें कभी, बिजली के दो तार ।।
मां चंदन की गंध है, मां रेशम का तार ।
बंधा हुआ जिस तार से, सारा ही घर-द्वार ।।

काव्य की एक विधा के रूप में दोहा बड़ा ही संश्लिष्ट (कॉम्पैक्ट) होता है, ग़ज़ल के मतले या मक़्ते से भी ज़्यादा, पर यह सब रचनाकार की क्षमता पर निर्भर है. इस संदर्भ में मुझे यह शेर याद आ रहा है-

क्या नज़ाकत है कि आरिज़ उनके नीले पड़ गये।
हमने तो बोसा लिया था ख़्वाब में तस्वीर का ।।

अब अंजुम का यह दोहा देखिए-

टूट रही है साधना, दरक रहा विश्वास ।
गोरी फागुन में लगे, दहका हुआ पलाश ।।

पर 'अंजुम' मात्र अपने में सीमित कवि नहीं हैं, वे समाज दृष्टा भी हैं. सामाजिक संस्कारों के प्रति सजग हैं. आज की राजनीति के प्रति उनकी प्रतिक्रिया देखिए-

खेल अनोखे खेलता, दिल्ली का दरबार ।
आंखों में पानी नहीं, किससे करें पुकार ।।

पर हमारी संस्कृति चिरंतन है. एक अदृश्य स्नेह हमें बांधे रहता है. एक पुत्र के उद्‌गार पिता के प्रति देखिए-

पिता आपकी झिड़कियां, पिता आपका प्यार ।
इस थाती पर आपकी, बलिहारी संसार ।।

इस प्रकार कहना पड़ेगा कि 'अंजुम' की काव्य-रचना का फलक व्यापक है. अच्छे ग़ज़लकार, व्यंग्यकार तो वे हैं ही, अच्छे दोहाकार भी हैं. अंततः 'प्रिया तुम्हारा गांव शीर्षक द्वारा एक नया अर्थबोध कराते हैं. 'प्रिया' शब्द को अलग-अलग स्थितियों में वे व्यक्तिवाचक संज्ञा और विशेषण (प्रिये!) के रूप में लाये हैं, जो काव्य सौंदर्य उत्पन्न करता है.

दोहों की इस सफल कृति के लिए मेरी बधाई !

एफ.एफ.४/बी-ब्लॉक, सनपॉवर फ्लैट्स,
गुरुकुल रोड, अहमदाबाद-३८००५२

लघुकथा

देहभक्षी

ज्योति जैन

कुछ सुबकने-सिसकने की आवाज़ सुन मिसेस मल्होत्रा कुछ शंकित सी सावधानीपूर्वक उस आवाज़ की ओर जाने लगीं. वह एक स्टोर रूम जैसा अंधेरा कमरा था. अंदर झांका तो एक लड़की अस्त-व्यस्त हालत में घुटनों में सिर दिये रो रही थी.

'कौन हो तुम? क्या हुआ? क्यों रो रही हो?' सारे सवाल एक साथ पूछ डाले उन्होंने. पर जैसे ही लड़की ने चेहरा ऊपर किया वे चौंक उठी. 'अरे! तुम तो वो कांति हो ना? जिसने दराती से शेर को मार डाला था? तुम्हें तो कल पुरस्कार मिलनेवाला है ना? यहां क्या कर रही हो? और किसने ये हालत.....ओ....माई गॉड.' हालत समझते ही घुटी सी चीख़ उनके गले से निकली.

'मैडम जी!' कांति रूदन करती उनसे लगकर फूट पड़ी- 'शेर को तो मैंने मार डाला, पर आदमी से नहीं बच पायी मैडम जी, वो शेर से भी बड़ा देहभक्षी निकला.'

१४३२/२४, नंदानगर,
इंदौर-४५२०११

कविता

कोशिश

डॉ. के. बी. श्रीवास्तव

मैंने बहुत कोशिश की
हवा को मुट्ठी में बंद करने की,
रोशनी को बांधने की,
सूरज के किरणों के ऊपर
चलकर आसमान में पहुंचने की.
आकाश के सीने पर
शब्दों से कविता रचने की.
मैंने बहुत कोशिश की
आसमान को नापने की,
तारों की संख्या गिनने की,
चांद को छूने की,
समुंदर को लांघने की,
गहराई को नापने की,
अंदर के मोती चुनने की,
लेकिन कोशिश तो बस
कोशिश होती है.
भटके युवकों को राह दिखाने की
मंज़िल मुकाम तक पहुंचाने की,
अपराध की आंधी से
बचाने की
मैंने बहुत कोशिश की.

रोड नं.५, जूरन छपरा,
मुजफ्फरपुर-८४२००१

कविताएं

जेब टटोलता है !

जे. पी. टंडन 'अलौकिक'

न जाने क्यों वह बार-बार
अपनी जेब टटोलता है,
कभी कमीज़ की
तो कभी पैन्ट की
जेब टटोलता है
हर एक जेब में कुछ रुपये
छिपाकर रखे हैं
कहीं रुपये गुम न हो जायें
इसी से जेब टटोलता है,
जेब के भीतर ही भीतर
रुपये गिनने होते हैं
इसीलिए बारी-बारी से
हर एक जेब टटोलता है,
परसों रामू की जेब
किसी जेब कतरे ने काट ली थी
इसी डर से जेब में हाथ डालकर
जेब टटोलता है
कोई रिश्वत या पाप की कमाई नहीं है,
मेहनत की कमाई है
कोई चोर पैसे न चुरा ले
इसी से जेब टटोलता है,
बिटिया की शादी में
ये लाना है वो लाना है,
यही सोच सोचकर
हाथों की उंगलियों से
जेब के अंदर ही अंदर
'अलौकिक' जेब टटोलता है.

२/१४७, खतराना,
फ़र्रुख़ाबाद (उ.प्र.) २०९६२५

हंसता कौन है ?

डॉ. वरुण कुमार तिवारी

कैसे खो गयी ख़ुशी
हमारी उम्र की दहलीज से,
कैसे बन गयी हंसी
हमारे जीवन की
सबसे महंगी चीज़?
थोड़ी-सी बची-खुची ख़ुशी
थोड़ी-सी नैसर्गिक हंसी
संजोये थे हम,
कठिन संघर्षों के बीच
पुरखों की पीढ़ी से,
झंडू-बाम की तरह.
खूंखार बाजीरीकरण
निकाल ले गया उसे भी
अपने आड़े-तिरछे चिमटे से,
और अश्लीलता का,
जामा पहनाकर
परोस दिया भरे बाजार में.
अब करोड़ों का है
हंसने-हंसाने का कारोबार,
जिसमें हर कारोबारी
उन्हीं सुने-सुनाये चुटकुलों से
कर रहा है चमत्कार.
लेकिन हंसता कौन है?

स्टेट बैंक कॉलोनी,
वीरपुर (बिहार) ८५४३४०

'कथाबिंब' के नये आजीवन सदस्य

१८४. श्रीमती ज्योति जैन, इंदौर
१८५. श्री ललित कांत पांडेय, नवी मुंबई
१८६. श्री अजय माथुर, अलीगढ़
१८७. श्री गजानंद शर्मा, महासमुंद
१८८. श्री राजेंद्र वर्मा, लखनऊ
१८९. श्री नूर मुहम्मद 'नूर', कोलकाता
१९०. श्री श्याम नारायण श्रीवास्त, रायगढ़

निवेदन

रचनाकारों से

*"**कथाबिंब**" एक कथाप्रधान पत्रिका है, कहानी के अलावा लघुकथाएं, कविता, गीत, ग़ज़लों का भी हम स्वागत करते हैं. कृपया पत्रिका के स्वभाव और स्तर के अनुरूप ही अपनी श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशनार्थ भेजें. साथ में यह भी उल्लेख करें कि **विचारार्थ भेजी गयी रचना निर्णय आने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.***

१. कृपया केवल अपनी अप्रकाशित और मौलिक रचनाएं ही भेजें. अनूदित रचना के साथ मूल लेखक की अनुमति आवश्यक है.

२. रचनाएं काग़ज़ के एक ओर अच्छी हस्तलिपि में हों या टंकित हों. कृपया ई-मेल का उपयोग रचना भेजने के लिए न करें.

३. रचनाओं की प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें. वापसी के लिए स्व-पता लिखा, टिकट लगा लिफ़ाफा व एक पोस्ट कार्ड अवश्य साथ रखें, अन्यथा रचना संबंधी किसी भी प्रकार का पत्राचार करना संभव नहीं होगा.

४. सामान्यत: प्रकाशनार्थ आयी कहानियों पर एक माह के भीतर निर्णय ले लिया जाता है. अन्य रचनाओं की स्वीकृति की अवधि दो से तीन माह हो सकती है. कहानियों के अलावा चयन की सुविधा के लिए एक बार में कृपया एक से अधिक रचनाएं (लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल आदि) भेजें.

ग्राहकों /सदस्यों से

कृपया समय रहते अपने शुल्क का नवीनी करण करा लें. नये सदस्यों /ग्राहकों को शुल्क प्राप्त की सूचना अलग से भेजना संभव नहीं है. यदि तीन माह के भीतर नया अंक न मिले तो कृपया अवश्य सूचित करें.

Mob. 09939492410, College Phone : 0621-2220743

J. P. I. P. Medical Science & Hospital

(Regd. by N. C. T. of Delhi, Govt. of India)

AFFILIATED WITH

(1) Medical Council of Patent Medicine Open International University of WHO, Delhi;
(2) Para Medical Technology Council, Delhi; (3) Rajasthan Vidyapeeth Deemed University Faculty of Medical Science, Distance Education Wing.

Head Office : 1/54 Trilok Puri, New Delhi-400 091. Ph. : 09999221698.
Branch Office : Rd. No. 5, Juran Chhapra, Muzaffarpur-842001(Bihar).
All Cources are approved by High Court,
Recognised by WHO & Accepted by Govt. of India.

COURSES OFFERED :

Degree : Medical - B. A. M. S., 4yrs. Qualification - Inter any Stream.
Dental - B. D. A. S., 3yrs. Qualification - Inter.
Diploma - (Paramedical) 2yrs., DMLT (Lab), X-Ray (DMRT),
A.N.M., Asst. Nursing (सहायक नर्स)- Male/Female, OT Asst. (DOTT).

1. संपूर्ण भारत में Medical Practice हेतु मान्य; 2. अवकाश प्राप्त अभ्यार्थियों की प्रैक्टिस हेतु प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध; 3. पत्राचार द्वारा Study Material के साथ पाठ्यक्रम पूर्ण करने की सुविधा उपलब्ध.

निदेशक : डॉ. के. बी. श्रीवास्तव (एम. डी.)

With Best Compliments From

Avinash Forming

Mfgrs. Stockist & Suppliers of :
Stainless Steel, Alloy Steel & Mild Steel

Factory : W-391, T. T. C. Industrial Area,
MIDC Rabale, Navi Mumbai-400 701.

Tel. : 2769 0381 (F), 2755 0852 (R)

With Best Compliments From

Saptagiri Packagings Pvt. Ltd.

SPECIALISTS IN :
PRINTED CARTONS, LINER CARTONS & BLISTER BACKUP CARDS

1,2,3 BISHEN UDYOG PREMISES, OPP. RAJA INDL. ESTATE
JAIN MANDIR ROAD, MULUND (W), MUMBAI-400 080.
TEL. : 6798 7564/65, 2569 0498,2569 4691
FAX : 91-22-2567 4163
e-mail : spack@vsnl.com